स्पंदन से सृष्टि तक : भावों की अनहद यात्रा

स्पंदन

एक काव्य शृंखला

अरुण सक्सेना

'अघोर आनंद'

BlueRose ONE.com

Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Arun Saxena "Aghor Aanand 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-775-9

First Edition: August 2026

अस्वीकरण (Disclaimer)

यह काव्य-संग्रह 'स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति' पूर्णतः लेखक की व्यक्तिगत भावनाओं, स्मृतियों, कल्पनाओं और जीवन-दर्शन का काव्यात्मक स्वरूप है। इस पुस्तक का उद्देश्य मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को शब्दों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाना है।

पुस्तक में वर्णित परिदृश्य और मानवीय संबंध सामान्य अनुभूतियों पर आधारित हैं। यदि इन कविताओं के किसी पात्र, घटना या विचार की किसी जीवित अथवा मृत व्यक्ति, स्थान या वास्तविक घटना से कोई समानता पाई जाती है, तो उसे मात्र एक संयोग समझा जाना चाहिए। इसका उद्देश्य किसी की निजता का हनन करना नहीं है।

पुस्तक के ऐतिहासिक और आध्यात्मिक प्रसंगों (जैसे जनजातीय नायकों, ऐतिहासिक महापुरुषों, वीर सैनिकों, ज्योतिर्लिंगों और कुम्भ आदि) का वर्णन लेखक की निजी आस्था, लोक-इतिहास और अध्ययन पर आधारित है। इसका उद्देश्य वीरों का वंदन और शिव-महिमा का गान करना है; किसी भी धर्म, जाति, संप्रदाय या स्थापित ऐतिहासिक तथ्यों की भावनाओं को ठेस पहुँचाना नहीं है।

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति
एक काव्य-शृंखला

लेखकीय भूमिका

मनुष्य का जीवन अनेक भावों का संगम है—
कभी प्रेम की मधुरता,
कभी स्मृतियों की नमी,
कभी वीरता का ओज,
तो कभी आत्मा की मौन खोज।

"स्पंदन" उसी भाव-संसार की एक काव्य-यात्रा है।

इस शृंखला की प्रत्येक रचना किसी अनुभव, स्मृति, संबंध या आत्मिक अनुभूति से जन्मी है। कहीं प्रेम की भीनी सुगंध है, कहीं बचपन के आँगन की स्मृतियाँ; कहीं राष्ट्र और स्वाभिमान का जयघोष है, तो कहीं आत्मा की उस शांति की खोज, जो मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित कराती है।

इस काव्य-शृंखला का उद्देश्य केवल भावों को शब्द देना नहीं, बल्कि पाठक के भीतर उन स्पंदनों को जागृत करना है, जो जीवन को अधिक गहरा और अर्थपूर्ण बनाते हैं। यदि इन रचनाओं में पाठक अपने जीवन की कोई स्मृति, अनुभूति या प्रश्न देख पाए, तो यही इस भाव-यात्रा की सबसे बड़ी सार्थकता होगी।

— अरुण सक्सेना (अघोर आनंद)

समर्पण

मेरे परम पूज्य पिता जी की पावन स्मृति को—

जिनके अनुशासन, मौन संघर्षों और जीवन-दृष्टि ने मुझे धूप में चलना सिखाया;

और मेरी माँ को—

जिनके स्नेहिल आँचल ने हर पीड़ा और भय से मुझे सदैव सुरक्षित रखा।

यह 'स्पंदन' केवल मेरे शब्द नहीं,

आपके दिए हुए संस्कारों, स्नेह और जीवन-मूल्यों की ही प्रतिध्वनि है।

नमन उस परम चेतना, उस शिवत्व और मेरे ईष्ट को भी,

जिन्होंने मेरे भीतर इस भाव-यात्रा का बीजारोपण किया।

और ये शब्द समर्पित हैं उन सभी स्मृतियों, संबंधों और मौन संघर्षों को भी

जिन्होंने मुझे 'मैं' की सीमाओं से निकालकर इस 'स्पंदन' से परिचित कराया।

काव्यकार परिचय

“शब्द तब जन्म लेते हैं, जब भीतर का मौन स्पंदित होने लगता है।”

अरुण सक्सेना (अघोर आनंद) समकालीन हिंदी साहित्य के संवेदनशील एवं चिंतनशील रचनाकार हैं, जिनकी लेखनी प्रेम, स्मृति, परिवार, राष्ट्रभाव, आत्मबोध और शिवत्व जैसे विषयों को गहन भाव-संवेदना के साथ अभिव्यक्त करती है। उनकी रचनाओं में मानवीय संबंधों, भारतीय सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिक अनुभूतियों का सहज समन्वय दिखाई देता है।

वे वर्तमान में भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL) में विद्युत अभियंता के रूप में कार्यरत हैं तथा उन्होंने Hewett Polytechnic से अभियंत्रण (डिप्लोमा) की शिक्षा प्राप्त की है। साहित्य के साथ-साथ वे भारतीय ज्योतिष, दर्शन और अध्यात्म के गंभीर अध्येता भी हैं, जिनका प्रभाव उनके चिंतन और लेखन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

“अभिमन्यु: हतो हतः — अभिमन्युवधसंदेश (कृष्ण–सुभद्रा संवाद)” उनकी प्रथम प्रकाशित काव्य-कृति है। “स्पंदन — विभिन्न रसों की अनुभूति” उनकी भाव-यात्रा का विस्तृत काव्यरूप है, जिसमें प्रेम से आत्मबोध और शिवत्व तक की मानवीय यात्रा को विविध रसों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

लेखक का विश्वास है कि साहित्य केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि आत्ममंथन और अंतर्मन के सत्य से परिचय का माध्यम है।

स्पंदन –

विभिन्न रसों की अनुभूति

एक भाव-यात्रा : प्रेम से परम शांति तक

एक काव्य-शृंखला

काव्यकार : अरूण सक्सेना (अघोर आनंद)

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

एक काव्य-शृंखला

भाग १ : प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन

भाग २ : स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर

भाग ३ : समाज, संघर्ष और आत्मबोध

भाग ४ : राष्ट्र, स्वाभिमान और अमर गाथाएँ

भाग ५ : प्रकृति, शिव और शांति

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

एक काव्य-शृंखला

भाग १ : प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन

“जहाँ हृदय पहली बार स्वयं को महसूस करता है”

भाग 1 :
प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन

भाग १ : प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन

रस-भूमिका

मनुष्य के हृदय में जन्म लेने वाला पहला और सबसे सूक्ष्म स्पंदन प्रेम ही होता है।

वही प्रेम कभी आकर्षण बनकर आँखों में उतरता है, कभी मौन बनकर आत्मा में ठहर जाता है, और कभी उत्तरदायित्व बनकर जीवन का आधार बन जाता है।

इस भाग की रचनाएँ प्रेम को केवल श्रृंगार या संबंध के रूप में नहीं, बल्कि एक क्रमिक आंतरिक यात्रा के रूप में देखती हैं।

यहाँ प्रेम पहली दृष्टि की हल्की आहट से प्रारंभ होकर साथ, विवाह, स्थायित्व और अंततः आत्मीय उत्तरदायित्व तक पहुँचता है।

कहीं स्मृतियों की नमी है, कहीं प्रतीक्षा का मधुर विराम, कहीं मौन संवादों की आत्मीयता, तो कहीं ऐसा अपनापन जो शब्दों से परे जाकर आत्मा का स्पंदन बन जाता है।

इन कविताओं में श्रृंगार रस के साथ करुण, शांत और वात्सल्य भाव भी सूक्ष्म रूप से प्रवाहित हैं।

यह भाग उस भावभूमि का निर्माण करता है जहाँ मनुष्य पहली बार स्वयं को किसी दूसरे हृदय में पहचानना आरम्भ करता है।

भाग १ : प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन

काव्य-शृंखला – सूची

प्रेम के विभिन्न स्वरूप

1. प्रेम क्या है ?
2. पहली दृष्टि का प्रेम
3. तेरी आँखें
4. मौन
5. इच्छा
6. साथ
7. विवाह
8. दिनचर्या
9. स्थायित्व
10. उत्तरदायित्व
11. परिधि के बाहर प्रेम
12. गोरी प्यार तुम्हारा हाला है

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का प्रथम मोती
प्रेम क्या है ?

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ प्रेम केवल आकर्षण नहीं, बल्कि प्रकृति, स्मृति, स्पर्श और उत्तरदायित्व के रूप में जीवन के हर आयाम में प्रवाहित होता है।"

"प्रेम क्या है?" स्पंदन काव्य-शृंखला का प्रथम मोती है, जिसमें प्रेम को केवल एक संबंध नहीं, बल्कि जीवन की व्यापक अनुभूति के रूप में देखा गया है। यह रचना प्रेम के विविध स्वरूपों—प्रकृति की मधुरता, आत्मीय संबंधों, मौन संवाद, स्मृतियों और उत्तरदायित्व—को सहज भाव से अभिव्यक्त करती है।

कविता यह संकेत देती है कि प्रेम समय के साथ बदलता, परिपक्व होता और विस्तार पाता है। वह कभी एक कोमल अनुभूति बनकर जन्म लेता है, तो कभी जीवन-सहचर्य, संरक्षण और समर्पण का आधार बन जाता है। अंततः प्रेम ही वह शाश्वत तत्व है, जो मनुष्य के भीतर सबसे गहरी अनुगूँज बनकर रह जाता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का प्रथम मोती

प्रेम क्या है ?

प्रेम वह सुगंध है,
जो प्रातःकाल की बेला पर
मधुरिम अरुणिमा लाती है।

वह है बेले के फूल की भीनी गंध,
जो कोमलांगी के केशों में
लिपटे पुष्प-गुच्छ से,
एकाकी हृदय के हर रोम में
सुगंध भर जाती है।

प्रेम वह सुगंध है
उस आम्रफल की,
जो प्रकृति में पकते समय आती है;
या उस रजनीगंधा की कलियों से,
जो रात्रि के पहर, मुस्कुराते हुए
मन को गुदगुदा जाती है।

प्रेम वह रस है
लीची के फल जैसा,
जो प्रेयसी के अधरों से
अनायास रिस कर,
प्रेमी के हृदय को
उद्वेलित कर देता है।

प्रेम वह वर्षा है,
वो रिमझिम वर्षा,
जो भीगे तनों में भी
अनंग-अग्नि प्रज्वलित कर देती है।

प्रेम वो रंग है,
जो प्रातःकाल की सुंदर बेला में
प्रेमी अपने हृदयपट में
बसी सुंदर मूरत में भरता है;
या प्रेमिका के मन की तरंगें,
जिन्हें वह
आकाश में उड़ते
बादलों में बुन देता है।

प्रेम वो स्पर्श है,
जिसे पाने को
हंस-हंसिनी की ग्रीवा को छूता है;
या वो गुलाब की कलियाँ,
जो प्रेमिका के हाथों में हों
और जिनकी छुअन
प्रेमी हृदय
महसूस करता है।

प्रेम वो गीत है,
जो कोयल के कंठ से निकल,
प्रेमी को आशा से भर देता है;

या पपीहे की पीहू-पीहू,
जो प्रेमिका के हृदय को
तड़प से भर देती है।

प्रेम वह प्रथम स्पंदन है,
जो अनंत काल तक अंतरात्मा में गूँजता रहता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का द्वितीय मोती
पहली दृष्टि का प्रेम

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ प्रेम अचानक नहीं जन्मता, बल्कि किसी एक उपस्थिति का धीरे-धीरे मन में ठहर जाना ही उसकी पहली आहट बनता है।"

"पहली दृष्टि का प्रेम" स्पंदन काव्य-शृंखला का द्वितीय मोती है, जिसमें प्रेम की आरंभिक अनुभूति का अत्यंत सूक्ष्म और भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह रचना बताती है कि पहली दृष्टि स्वयं प्रेम नहीं होती, बल्कि एक ऐसी संभावना होती है जहाँ मन किसी उपस्थिति के प्रति अनायास ठहरने लगता है।

जब वही चेहरा स्मृतियों में लौटने लगे, प्रतीक्षा मधुर लगने लगे, और किसी की उपस्थिति मन के कोलाहल में भी एक शांत स्वर बन जाए—तभी प्रेम धीरे-धीरे अपने वास्तविक स्वरूप में जन्म लेता है। यह कविता आकर्षण से आत्मिक निकटता तक की उसी मौन यात्रा की अभिव्यक्ति है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का द्वितीय मोती

पहली दृष्टि का प्रेम

पहली दृष्टि कभी प्रेम नहीं होती,
वह केवल संभावना होती है;
मन की सूनी धरती पर जैसे,
कोई पहली आहट होती है।

प्रेम तब धीरे जन्म लेता है,
जब वही दृष्टि फिर ठहर जाए;
सभी चेहरों की भीड़ के भीतर,
मन केवल उसी को ढूँढने जाए।

जिस ठहराव में प्रश्न नहीं रहता,
केवल कोमल जिज्ञासा होती है;
वही उस मौन हृदय में प्रेम की,
प्रथम अभिलाषा होती है।

प्रेम के जन्म से पहले भी,
मन में एक रिक्त दिशा रहती है;
जहाँ कोई अनजानी उपस्थिति,
चुपचाप हृदयतल में उतरती है।

और जब वही एक उपस्थिति,
मन के कोलाहल में भी ठहर जाए;
भीतर बहते असंख्य स्वरों में,
एक शांत धुन-सी उतर आए।

जब प्रतीक्षा बोझ नहीं लगती,
दिन का मधुर विराम बन जाती है;
और किसी का स्मृति मात्र ही,
भीतर एक दीप जला जाती है।

तब मन यह अनुभव करता है—
प्रेम अचानक उतरता नहीं;
वह चुपचाप समय के संग,
भीतर अपना घर रचता है वहीं।

और फिर एक दिन अनायास ही,
मन स्वयं बदलने लगता है;
किसी और के सुख-दुःख में भी,
अपना स्पंदन मिलने लगता है।

न कोई घोषणा, न कोई शपथ,
फिर भी एक अपनापन जन्मता है;
और दो अनजान दिशाओं के बीच,
मौन प्रेम का सेतु बनता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का तृतीय मोती
तेरी आँखें

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ समय सब कुछ धुंधला कर देता है, फिर भी किसी प्रिय की आँखें स्मृति में अनंत काल तक उजली बनी रहती हैं।"

"तेरी आँखें" स्पंदन काव्य-शृंखला का तृतीय मोती है, जिसमें स्मृति, प्रेम और कालातीत अनुभूति का अत्यंत भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह रचना बताती है कि समय के साथ चेहरे, घटनाएँ और वादे भले धूमिल हो जाएँ, पर किसी प्रिय की आँखें हृदय में अमिट स्मृति बनकर जीवित रहती हैं।

यह कविता केवल प्रेम-स्मरण नहीं, बल्कि उस आत्मिक संबंध की अनुभूति है जो समय, दूरी और जन्म-मरण की सीमाओं से भी परे जाकर स्थायी हो जाता है। यहाँ प्रिय की आँखें केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि अथाह प्रेम और जीवन की गहरी अनुगूँज का प्रतीक बन जाती हैं।

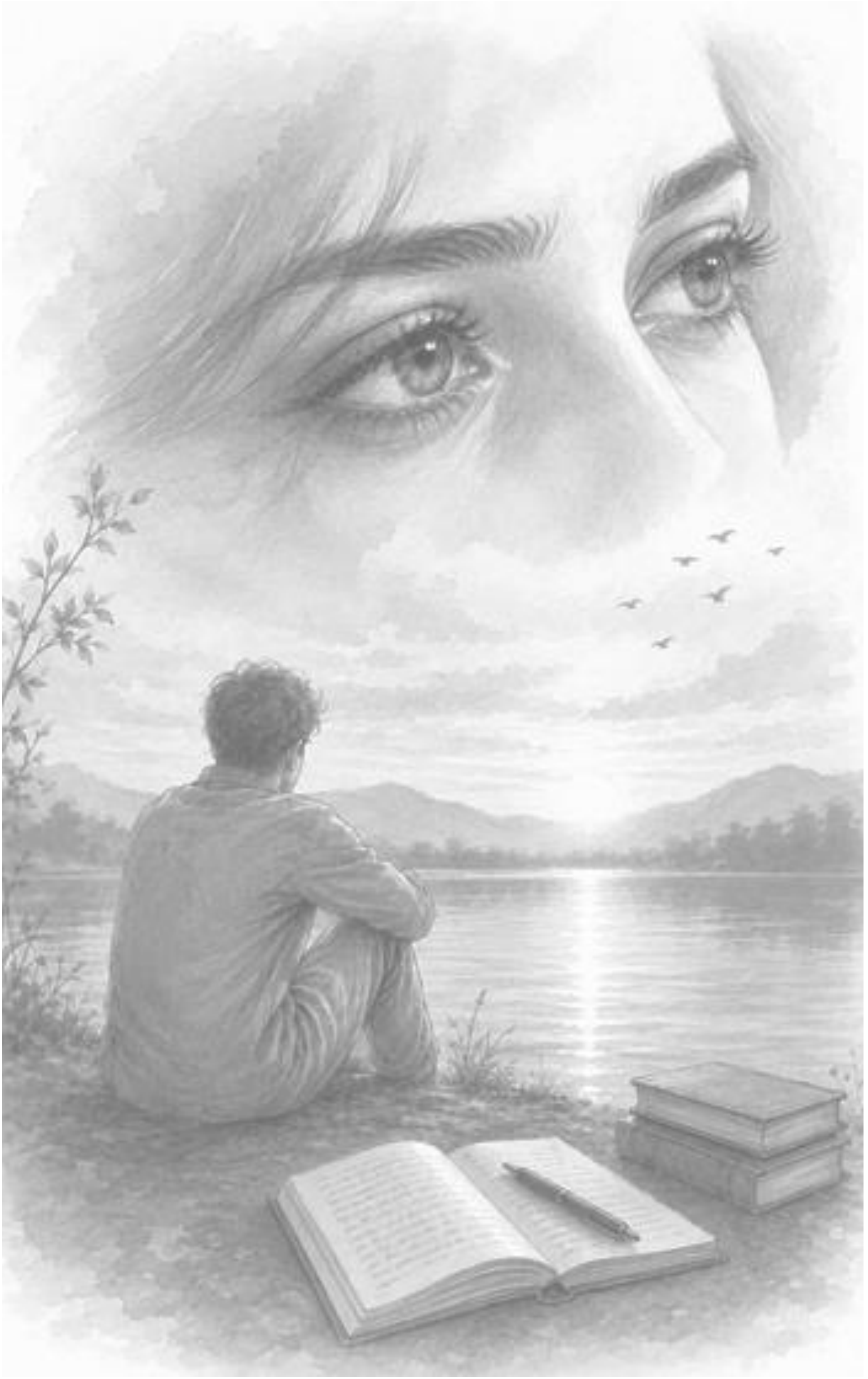

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का तृतीय मोती

तेरी आँखें

पल भूल गए,कल भूल गए,
कसमें मिट गईं,वादे रह गए;
नहीं मिटी हैं तो वो हैं मेरे संस्मरण में—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

चेहरा धुंधलाया, पता खो गया,
बातें भूल गए, रातें भूल गईं;
नहीं भूले हैं तो वो हैं मेरे संस्मरण में—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

काल-चक्र चला, माया-जाल फला,
बस्ती मिट गई, हस्ती मिट गई;
नहीं मिटी हैं तो वो हैं मेरे संस्मरण में—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

यौवन छँट गया, मधुरस घट गया,
लालसा मिट गई; आशा भी न रही,
नहीं मिटी हैं तो वो हैं, मेरे संस्मरण में—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

कैसे भूलूँ? क्यों भूलूँ?
तेरी आँखें,
जिनमें अथाह प्रेम है,

अथाह जस है,
जीवन की विराटता का रस है;
नहीं मिटी हैं, नहीं मिटेंगी
मेरे संस्मरण में—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

फिर चाहे पुनर्जन्म हो मेरा,
या फिर माया का कुचक्र—
जिसने चहुँ ओर है घेरा;

या फिर न निकल पाऊँ कभी
इस भवसागर से, अनंत काल तक;
फिर भी रहेंगी संस्मरण में मेरे—
तेरी आँखें, तेरी आँखें याद हैं।

नहीं भूला हूँ, नहीं मिटी हैं...
पल-पल जो याद आती हैं—
तेरी आँखें, तेरी आँखें, तेरी आँखें।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का चतुर्थ मोती
मौन

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ शब्द समाप्त हो जाते हैं और केवल मौन ही प्रेम का सबसे सच्चा संवाद बन जाता है।"

"मौन" स्पंदन काव्य-शृंखला का चतुर्थ मोती है, जिसमें प्रेम की उस शांत और परिपक्व अवस्था का चित्रण किया गया है जहाँ शब्दों की आवश्यकता धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है।

स्थिर दीपक-लौ, सांझ की नीरवता और दो आत्मीय हृदयों की सहज उपस्थिति के माध्यम से यह रचना दर्शाती है कि प्रेम जब आकर्षण से आगे बढ़ता है, तब वह आत्मिक निकटता और मौन समझ में परिवर्तित हो जाता है।

यह कविता उस गहरे संबंध की अनुभूति है, जहाँ केवल साथ होना ही सबसे सुंदर संवाद बन जाता है।

मौन प्रेम

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का चतुर्थ मोती
मौन

जब शब्द अपने अर्थ कह चुके होते हैं,
तब जो शेष बचता है— वही प्रेम होता है।

वह मौन ही है,
जो चुपचाप हाथ थामे बैठा रहता है;
बिना कहे ही मन की पीड़ा,
सहज भाव से पढ़ लेता है।

जब कुछ भी कहना शेष न हो,
फिर भी साथ बना रह जाए;
वही प्रेम की वह गहराई है,
जो मौन में भी सुनाई दे जाए।

प्रेम-दीप की लौ अब काँपती नहीं,
बस स्थिर होकर जलती है;
जैसे समझ गई हो—
अब स्थिरता ही पर्याप्त है।

दो प्रेमी जब सांझ ढले,
एक ही खिड़की से नभ निहारते हैं;
चाय के छोटे से संकेत को भी,
आँखों ही आँखों में स्वीकारते हैं।

वहाँ न वचन शेष रहते हैं,
न कोई प्रतिज्ञा बोलती है;
केवल साँसों की धीमी लय,
समय की स्वीकृति घोलती है।

प्रेम जब स्पर्श से आगे बढ़कर,
आत्मा में ठहर जाता है;
तब शब्द स्वयं मौन हो जाते हैं,
और मौन ही संवाद कहलाता है।

तब न दूरी कोई शेष रहती,
न कोई आग्रह रह जाता है;
दो हृदय केवल साथ नहीं रहते—
एक मौन स्पंदन बन जाते हैं।

इच्छा
किसी का होना,
साथ का एहसास
दिन को, हृदय को हल्का कर दे
यही इच्छा है,
यही साथ है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का पंचम मोती

इच्छा

जब इच्छा सदा कुछ पाने की नहीं,
कुछ सहज साझा करने की होती है;
किसी अपने की शांत उपस्थिति से,
हृदय की लय सहज होती है।

किसी के साथ का एहसास,
दिन को और सरल कर दे;
थके हुए मन की नीरवता में,
एक मधुर उजियारा भर दे।

यही इच्छा है, यही साथ है,
यही मन की पहली भाषा है;
यह अभी पूर्ण प्रेम नहीं,
पर प्रेम की ओर जाती अभिलाषा है।

यही वह पहली नमी है,
जिससे मन भीगने लगता है;
और कोई अनकहा अपनापन,
भीतर आकार लेने लगता है।

प्रेम के अंकुरण से पहले,
जो मन को धीरे-धीरे सींचता है;
वही अनकहा अपनापन,
पाने पर हृदय रीझता है।

जहाँ प्रतीक्षा बोझ नहीं लगती,
दिन का मधुर विराम बन जाती है;
और किसी की छोटी-सी उपस्थिति भी,
भीतर शांत उजास जगा जाती है।

तब इच्छा केवल आकांक्षा नहीं,
मन का सहज विस्तार बन जाती है;
और हृदय की वही कोमल उर्वरता,
धीरे-धीरे प्रेम का आधार बन जाती है।

साथ
हर समय बोलना नहीं,
हर समय सुनना भी नहीं,
मौन के साथ भी,
दिल की बातें हो जाएं,
वही सच्चा साथ है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का षष्ठम मोती

साथ

साथ, हर समय बोलना नहीं,
साथ, हर समय सुनना भी नहीं;
साथ तो वह शांत अनुभूति है,
जहाँ मौन भी अपना सा लगे, अजनबी नहीं।

जहाँ दो मन अपने-अपने मौन में,
फिर भी संवाद किया करते हैं;
बिना कहे ही हृदय के भाव,
एक-दूजे में जिया करते हैं।

जहाँ अकेलापन दिखता तो है,
दुनिया की इन नज़रों में;
पर भीतर मन है यह जान चुका—
कोई बसता है अब धड़कनों में।

यह अभी पूर्ण प्रेम तो नहीं,
पर उसकी प्रथम आहट है;
हृदय-भूमि में अंकुरण से पूर्व,
होती जो मधुर सुगबुगाहट है।

यही वह कोमल अवस्था है,
जहाँ मन से मन जुड़ जाता है;
और अनकहे अपनत्व के संग,
प्रेम चुपचाप जन्म पाता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन शृंखला का सप्तम मोती

विवाह

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ दो जीवन केवल साथ नहीं चलते, बल्कि संघर्ष, प्रतीक्षा और समर्पण में एक साझी साधना बन जाते हैं।"

"विवाह" स्पंदन काव्य-शृंखला का सप्तम मोती है, जिसमें विवाह को केवल सामाजिक बंधन या पारंपरिक व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि दो आत्माओं की सहयात्रा के रूप में प्रस्तुत करता है।

यहाँ कवि ये बताता है कि वास्तविक विवाह केवल उत्सवों और वचनों में नहीं, बल्कि संघर्षों, प्रतीक्षाओं और जीवन की विपदाओं में एक-दूसरे के साथ बने रहने में पूर्णता प्राप्त करता है। जब एक हृदय व्यथित हो और दूसरा उसका विश्राम बन जाए, जब वर्षों बाद भी एक दृष्टि पहली प्रतीक्षा-सी ठहर जाए—तभी संबंध अपने आध्यात्मिक अर्थ को प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह रचना विवाह को प्रेम की परिपक्व, स्थिर और कालजयी अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित करती है।

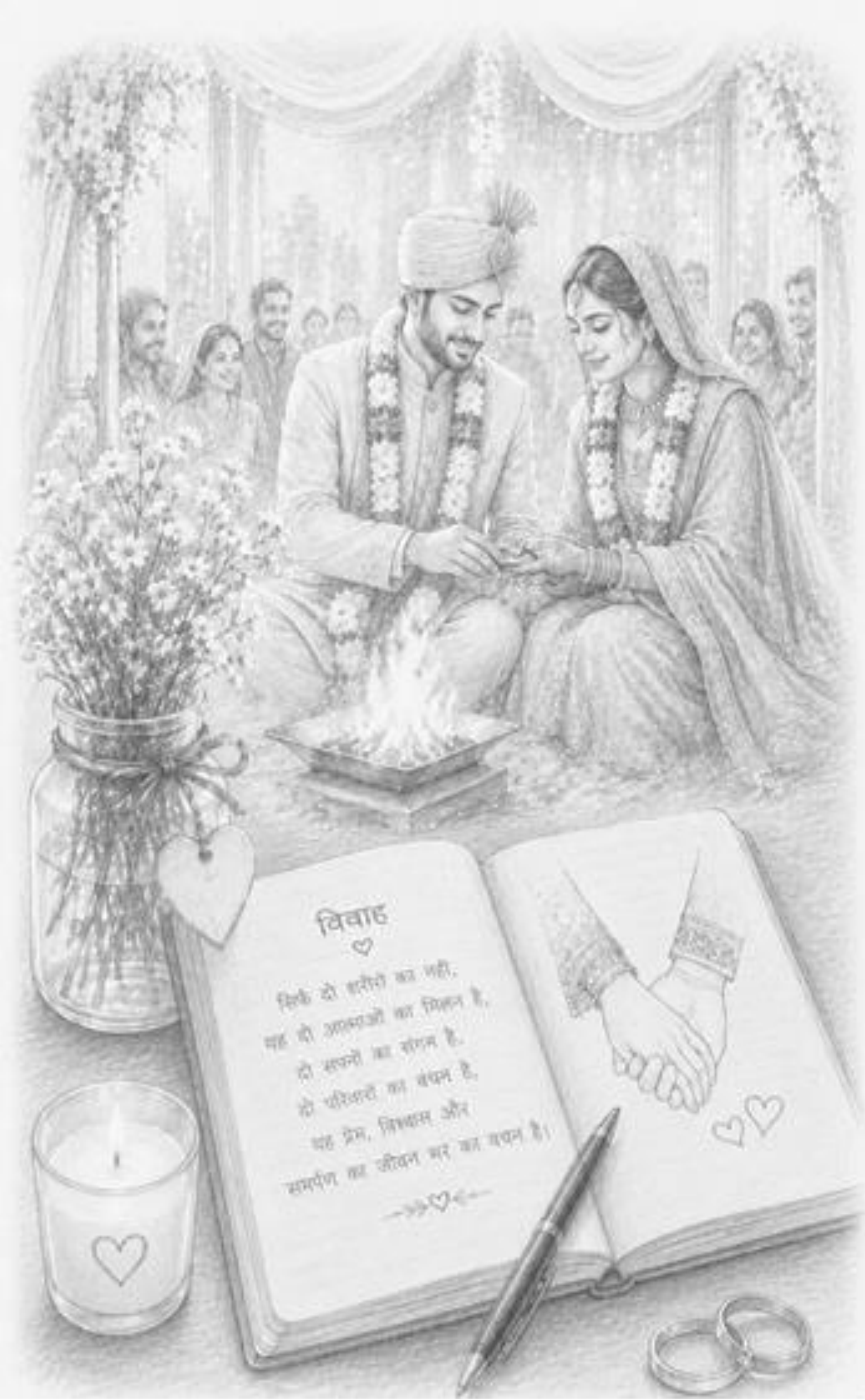
विवाह

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का सप्तम मोती
विवाह

जब दो अपरिचित जीवन धीरे-धीरे
एक साझा दिशा में बढ़ते हैं,
और विवाह केवल बंधन नहीं रहता—
दो आत्माओं की सहयात्रा का संकल्प बन जाता है।

जहाँ केवल उत्सव में नहीं,
विपदाओं में भी साथ रहता है;
और यदि व्यथित हो एक हृदय,
तो दूजे में विश्राम खोजता है।

जहाँ वर्षों बाद भी एक दृष्टि,
पहली प्रतीक्षा सी ठहर जाती है;
तब विवाह केवल सामाजिक बंधन नहीं,
दो आत्माओं की कालजयी प्रार्थना बन जाती है।

जहाँ शब्द धीरे-धीरे कम होते हैं,
पर अपनापन और गहरा हो जाता है;
तब दो तन केवल साथ ही नहीं चलते,
मन भी एक-दूसरे में बस जाता है।

जहाँ एक की अपूर्णता को दूजा,
सहज ही अपनी पूर्णता मान लेता है;
और ढलती हुई जीवन-साँझ को,
प्रेम का नया सवेरा जान लेता है।

जहाँ 'मैं' और 'तुम' की सीमाएँ मिटकर,
केवल 'हम' का अखंड स्वरूप रह जाता है;
तब एक की मौन प्रार्थना का प्रतिफल,
दूजे के जीवन का सत्य बन जाता है।

जब समय भी मौन होकर
उनके संग बहना सीख जाता है;
तब विवाह केवल संबंध नहीं,
जीवन का साधना-पथ बन जाता है।

और इस मौन साधना की पूर्णता में,
जब अस्तित्व पूरी तरह घुल जाता है;
तब वह संबंध केवल एक जीवन का नहीं,
जन्म-जन्मांतरों का 'स्पंदन' बन जाता है।

सकारात्मक सोच
समय प्रबंधन
स्वास्थ्य
आत्मविकास
कृतज्ञता
आज का लक्ष्य
जल्दी उठना
पढ़ाई / काम
परिवार के लिए समय
रात को आत्मचिंतन
दिनचर्या
हर दिन की एक कहानी है,
हर पल से एक जुबानी है,
जो समय को समझ कर चला,
उसकी हर राह सुहानी है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का अष्टम मोती

दिनचर्या

प्रेम सदैव साधारण होता है
साथ में सुबह की चाय,
ऑफिस के लिए निकलने पर
बंद होता हुआ घर का दरवाज़ा,
और “अपना ख्याल रखना”
जैसा छोटा लेकिन गहरा वाक्य।

यही है प्रेम-अंकुर का
हृदय-भूमि में प्रथम प्रस्फुटन।
अब ये अंकुर रोज़ की धूप से
कुछ सीखते हैं,
अब साथ उत्सव नहीं चाहता,
उसे सिर्फ़ निरंतरता चाहिए।

अब प्रेम कभी-कभी नहीं
किसी विशेष दिन में नहीं,
बल्कि हर साधारण दिन में
अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है।

समय पर बनी चाय में है,
बिना कहे बुझा दिए गए दीपक में है,
और उस प्रश्न में है कि
“आज कुछ अधिक मुस्कुरा रहे हो”

जो उत्तर नहीं, बस साथ चाहता है।
जहाँ प्रेम अब कोई प्रदर्शन नहीं माँगता,
बस एक-दूजे की सहज आदत बन जाता है;
और इसी साधारण सी दिनचर्या में,
जीवन का सबसे असाधारण सुकून मिल जाता है।

थकान भरे दिन के अंत में,
जब एक मुस्कान सारी थकान भुला दे;
तब समझ लेना कि यह दिनचर्या ही वह स्पंदन है,
जो दो अलग जीवनों को एक अद्वैत में मिला दे।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का नवम मोती

स्थायित्व

अब प्रेम दिखावे से मुक्त होकर,
आदतों में धीरे घुलता है;
कोई हर क्षण रुकना नहीं चाहता,
फिर भी अकेले चलना खलता है।

यह भी अभी पूर्ण प्रेम नहीं,
पर यहीं उसका आकार जन्मता है;
हृदय की उर्वर भूमि में अब,
संबंधों का वटवृक्ष पनपता है।

यहीं अंकुर तना बनना सीखता,
और मन यह समझने लगता है—
प्रेम केवल उत्साह नहीं,
अक्सर स्थिर ठहराव भी होता है।

और इसी शांत स्थिरता में,
प्रेम गहरी जड़ें जमाता है;
समय की धूप और वर्षा में भी,
मौन रहकर साथ निभाता है।

प्रेम केवल कहने में ही नहीं,
एक-दूजे को सँभालने में है;
गति धीमी हो जब जीवन की,
तब भी संग-संग चलने में है।

जो थामे रहता काँपते हाथ,
जब समय कठिन हो जाता है;
वही प्रेम समय के संग,
स्थायित्व कहलाता है।

और जब यही स्थायित्व स्वयं,
जीवन-साधना बन जाता है;
तब प्रेम देह और समय से परे,
शाश्वत 'स्पंदन' बन जाता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का दशम मोती

उत्तरदायित्व

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ प्रेम भावना से आगे बढ़कर किसी दूसरे जीवन के प्रति मौन दायित्व बन जाता है।"

"उत्तरदायित्व" स्पंदन काव्य-शृंखला का दशम मोती है, जिसमें प्रेम को केवल आकर्षण नहीं, बल्कि संरक्षण, समर्पण और जीवन-सहभागिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ प्रेम किसी प्रदर्शन में नहीं, बल्कि समय पर घर लौट आने, अपनों की आवश्यकताओं को बिना कहे समझ लेने और किसी दूसरे जीवन के सुख-दुःख को अपना मान लेने में दिखाई देता है।

यह रचना प्रेम की उस परिपक्व अवस्था को अभिव्यक्त करती है, जहाँ संबंध केवल भावना नहीं रहते—वे जीवन का शांत, स्थिर और आत्मीय दायित्व बन जाते हैं।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का दशम मोती

उत्तरदायित्व

प्रेम जब केवल चाह नहीं रहता,
तो उत्तरदायित्व बन जाता है।
वह माँ जिसकी दवाइयों का समय
घड़ी से पहले हृदय जान लेता है।

वह पिता जिसकी चुप्पी
अब प्रश्न नहीं, अनुभव है।
वह बच्चा जो पूछता नहीं
बस देखता है, और भरोसा करता है
कि कोई है, जो गिरने नहीं देगा।

यह प्रेम
फूल नहीं चढ़ाता, दीप नहीं जलाता;
यह प्रेम प्रतिदिन संध्या को
चुपचाप घर लौट आता है।
यह त्याग नहीं, यह बोझ नहीं
यह मौन स्वीकृति है
कि किसी और का जीवन
अब तुम्हारे निर्णयों से जुड़ा है।

और यही वह प्रेम है
जिस पर समय भी भरोसा करता है ।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का एकादश मोती
परिधि के बाहर

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ कुछ संबंध सामाजिक परिभाषाओं से परे होकर भी जीवन के सबसे सच्चे और आत्मीय स्पर्श बन जाते हैं।"

"परिधि के बाहर" स्पंदन काव्य-शृंखला का एकादश मोती है, जिसमें प्रेम को सामाजिक सीमाओं, औपचारिक संबंधों और पारंपरिक मान्यताओं से परे जाकर देखा गया है।

यह रचना उन आत्मीय संबंधों की बात करती है, जिन्हें समाज भले पूर्ण स्वीकृति न दे, पर वे अपने मौन अपनत्व, करुणा और उपस्थिति से जीवन को गहराई प्रदान करते हैं। यहाँ प्रेम रक्त, अधिकार या प्रमाणों से नहीं, बल्कि संवेदना, विश्वास और कर्म से परिभाषित होता है।

यह कविता प्रेम के उसी व्यापक स्वरूप को अभिव्यक्त करती है, जहाँ वास्तविक आत्मीयता किसी परिधि की मोहताज नहीं रहती।

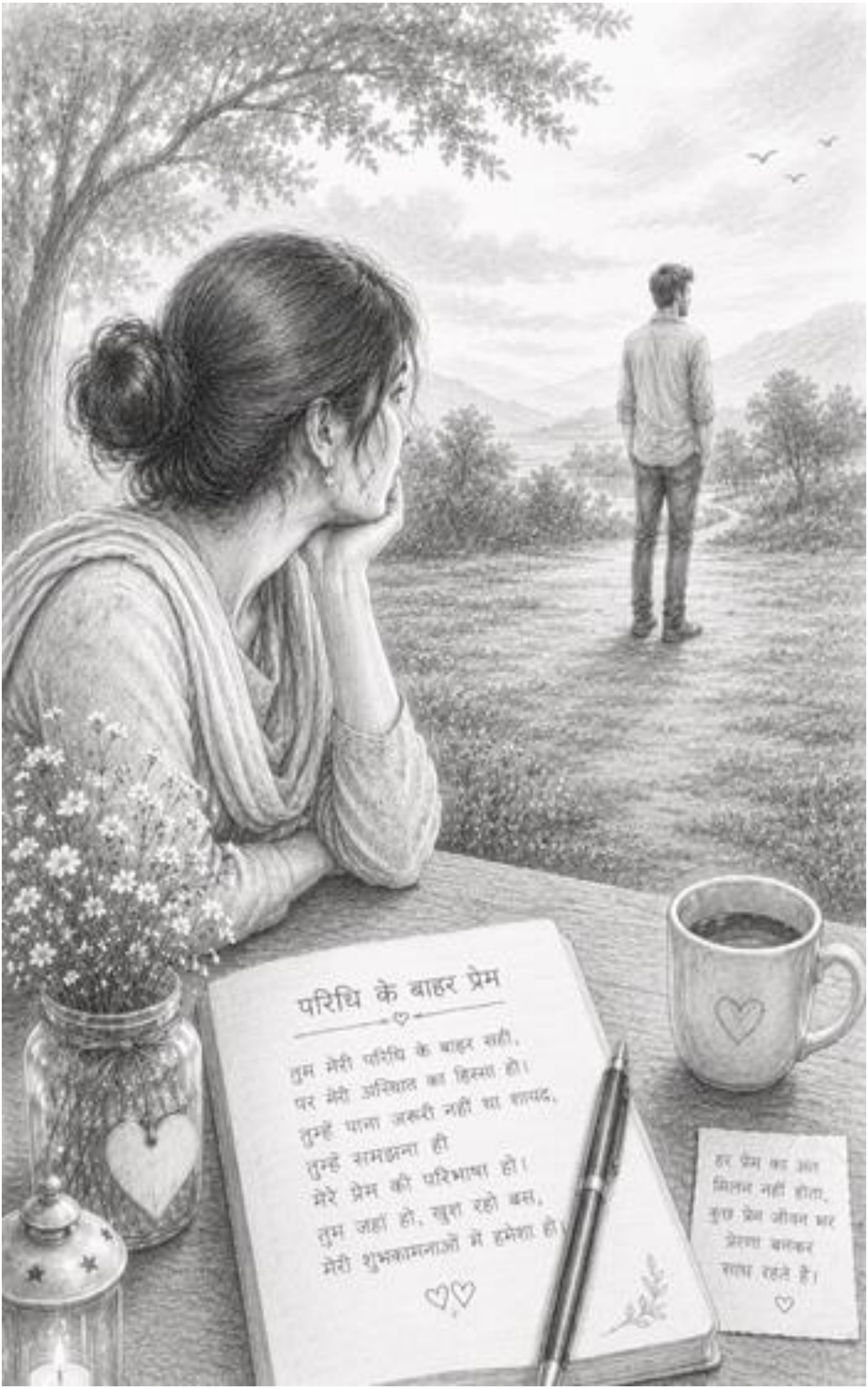
परिधि के बाहर प्रेम
तुम मेरी परिधि के बाहर सही,
पर मेरी अस्तित्व का हिस्सा हो।
तुम्हें पाना जरूरी नहीं था शायद,
तुम्हें समझना ही
मेरे प्रेम की परिभाषा है।
तुम जहाँ हो, खुश रहो बस,
मेरी शुभकामनाओं में हमेशा हो।
हर प्रेम का अंत
मिलन नहीं होता,
कुछ प्रेम जीवन भर
प्रेरणा बनकर
साथ रहते है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का एकादश मोती

परिधि के बाहर

कुछ प्रेम परिधि के भीतर नहीं आते।
वे आशीर्वाद नहीं पाते, स्वीकृति नहीं पाते
फिर भी, जीते रहते हैं।

वह स्त्री जो किसी की पत्नी नहीं,
फिर भी, किसी के जीवन की
सबसे स्थिर उपस्थिति है।

वह बच्चा जो रक्त से नहीं,
कर्मों से, अपना कहलाता है।

वह वृद्ध जिसके पास
कोई अपना नहीं,
फिर भी जो हर शाम
पड़ोस की चिंता करता है।

ये प्रेम समाज के
प्रमाणपत्र नहीं माँगते,
ये अपने होने से ही बस
प्रेम का एहसास दिलाते हैं।

यदि प्रेम केवल
मान्यताओं में समाता है,
तो वह छोटा है।
वास्तविक प्रेम
परिधि के बाहर खड़ा होकर
भी पूरा होता है।

हर प्रेम रिश्तों के साँचे में नहीं समाता,
कुछ तो परिधि के बाहर भी खिल जाते हैं।
बिना नाम, बिना स्वीकृति के,
वे हृदय को सबसे गहरा स्पंदन दे जाते हैं।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का अनंतिम मोती
गोरी प्यार तुम्हारा हाला है

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ श्रृंगार धीरे-धीरे वैराग्य में बदलता है, और प्रेम अंततः मुक्ति का मार्ग बन जाता है।"

"गोरी प्यार तुम्हारा हाला है" स्पंदन काव्य-शृंखला का अनंतिम मोती है, जिसमें श्रृंगार और अध्यात्म का अद्‌भुत संगम दिखाई देता है। प्रिय के सौंदर्य, स्पर्श और प्रेम को कवि ने "हाला" की मादकता के रूप में चित्रित किया है, जो हृदय को आनंद और भाव-विह्वलता से भर देता है।

किन्तु यह कविता केवल लौकिक प्रेम तक सीमित नहीं रहती। आगे चलकर प्रेम वैराग्य, आत्मबोध और शिवत्व की ओर मुड़ता है, जहाँ देह का आकर्षण आत्मा की साधना में परिवर्तित हो जाता है।

यह रचना प्रेम के उसी उच्चतर स्वरूप को अभिव्यक्त करती है, जहाँ श्रृंगार अंततः साधना बनकर मनुष्य को माया से परे दिव्य मिलन की ओर ले जाता है।

प्रेम और संवेदनाओं का प्रथम स्पंदन
शृंखला का अनंतिम मोती

गोरी प्यार तुम्हारा हाला है

मुख चन्द्र, लालिमा नयनों की,
भंगिमा, हृदय तरंगिमा;
करे हृदय विह्वल, मन होय चंचल।

ओठों का धनुष, स्पर्श-उत्सुक,
प्रेम करने को हिय मतवाला है;
गोरी, प्यार तुम्हारा हाला है!

कर्णों के कुंडल, मुख आभामंडल,
कंठ में सुशोभित स्वर्ण-रत्न जड़ित कंठ-माला है;
गोरी, प्यार तेरा ऐश्वर्य वाला है।

श्वासों में सुगंध, मधुर मुस्कान अधर,
अंग-प्रत्यंग बसे बस प्रेम-लहर;
यौवनांग उभार, कटि लचक अपार,
बाहों में बाजूबंद, राजसी निराला है;
गोरी, प्यार तेरा वैभव वाला है।

नाभि-प्रदेश मनोहर, डोले हृदय-सरोवर,
पैरों में सजे रजत-माला है;
गोरी, प्यार तेरा निराला है।

गोरी आ निकट, समय निकला अब,
ये समय बहुत गतिवाला है;
डूबें हाला में, मिले तभी स्वर्ग,
आनंद पाने को हिय मतवाला है;
गोरी, प्यार हमारा हाला है।

मैं हूँ अघोर, देखूँ चहुँ ओर,
नहीं दिखते मुझे स्वर्ण, रजत या रत्न;
करूँ कितना प्रयत्न, सब व्यर्थ हैं यत्न,

बस धूलि-धूसरित, पृथ्वी-गगन;
कैसे मिलूँ तुझे? मैं उस में मगन,
तेरे प्रत्यक्ष मेरा ये रूप अघोरी वाला है;
गोरी, प्यार मेरा वैराग्य वाला है।

मैं करूँ जतन, तुम करो प्रयत्न,
कर्म मिटें तभी, न हो पुनः जन्म;
फिर निकलें पार, सब माया-प्रपंच,
मिले तभी ईश्वर, है जो अर्धनारीश्वर;
मिलकर तरें हम भवसागर—
गोरी, प्यार ही मुक्ति का प्याला है!

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

एक काव्य-शृंखला

भाग २ : स्मृतियाँ, संबंध और अपनेपन का घर

“जहाँ स्मृतियाँ केवल याद नहीं,

जीवन का आधार बन जाती हैं”

भाग २ :
स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर

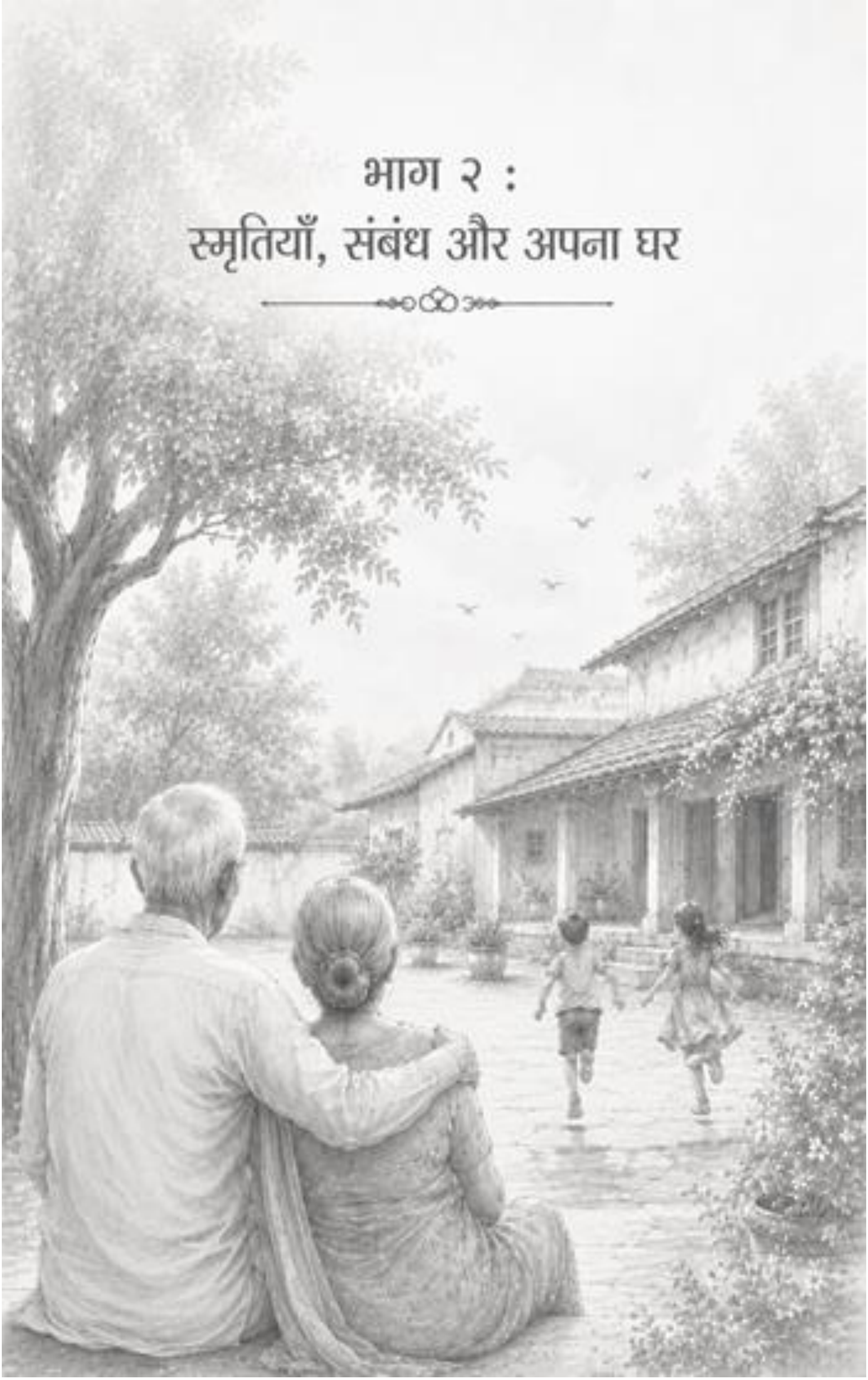

भाग २ : स्मृतियाँ, संबंध और अपनेपन का घर

रस-भूमिका

जीवन की सबसे गहरी जड़ें स्मृतियों, संबंधों और अपनेपन में छिपी होती हैं। मनुष्य चाहे समय और संसार में कितना भी आगे बढ़ जाए, उसके भीतर कहीं न कहीं एक घर, एक आवाज़, एक स्पर्श और कुछ आत्मीय चेहरे सदैव जीवित रहते हैं।

इस भाग की रचनाएँ उसी आत्मीय संसार की भाव-यात्रा हैं।

यहाँ माँ का आँचल सुरक्षा बनकर उभरता है, पिता का मौन संघर्ष आशीर्वाद बन जाता है, मित्रता समय से परे जाकर स्मृति में जीवित रहती है, और पैतृक घर केवल ईंटों का स्थान न रहकर जीवन का भावनात्मक आश्रय बन जाता है।

इन कविताओं में वात्सल्य, करुण, स्मृति और शांत रस का सुंदर समन्वय है।

यह भाग पाठक को उसकी अपनी स्मृतियों, बिछड़े संबंधों और उन मौन भावों से पुनः परिचित कराता है, जिन्हें समय कभी पूर्णतः मिटा नहीं पाता।

भाग २ : स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
(मनुष्य और उसका आत्मीय संसार)

काव्य-शृंखला – सूची

1. माँ का आँचल
2. पिता का आशीर्वाद
3. पैतृक घर (बचपन वाला घर, अपनेपन का आँगन)
4. परिवार
5. मित्रता
6. स्मृतिशेष
7. घरौंदा

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का प्रथम मोती
माँ का आँचल

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ माँ का स्नेह मृत्यु के बाद भी स्मृति और आत्मा के रूप में जीवन को आलोकित करता रहता है।"

"माँ का आँचल" स्पंदन काव्य-शृंखला का प्रथम मोती है, जिसमें माँ के विछोह से उपजे शोक, स्मृति और आत्मीयता का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है।

कविता में माँ केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि सुरक्षा, वात्सल्य और निस्वार्थ प्रेम का प्रतीक बनकर उभरती है। बचपन की स्मृतियाँ, माँ के आँचल का सुकून और उसकी पुकार—सब मिलकर हृदय में करुणा और अपनत्व का गहरा स्पर्श जगाते हैं।

यह रचना अंततः उस आध्यात्मिक सत्य तक पहुँचती है, जहाँ माँ देह से दूर होकर भी स्मृति, संस्कार और आत्मा के रूप में सदैव जीवित रहती है।

माँ का आँचल

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का प्रथम मोती

माँ का आँचल

मैं माँ को अब याद करूँ,
और रोऊँ कई-कई बार,
क्यों न मैं तब साथ में बैठा?
बुलाती थी वो जब नाम पुकार।

माँ, तू कहाँ गई? क्यों गई?
मुझे न ले गई इस बार;
बचपन से था संग मैं जाता,
क्यों सुनी न अबकी तेरी पुकार?

क्यों तूने न मुझे बुलाया?
क्यों छोड़ चली इस बार?
तू तो चली गई अपनी राह,
मैं ताकूँ चौबारे और द्वार।

तेरा आँचल अब भी याद है,
जिसमें सोता था मैं छिपकर;
दुनिया की हर पीड़ा मिट जाती,
तेरे स्नेहिल आँचल में सिमटकर।

नींद उतर आती थी पल में,
सुनाती थी कहानी हँसकर;
सो जाता था मैं तेरे आँचल में,
निर्भय-निडर दुख भूलकर।

तू कहती थी— "मेरा प्यारा,
राजदुलारा बेटा है सुकुमार",
पर अब तू एक बार न बोली—
"चल, साथ चल मेरे राजकुमार।"

कैसे रहूँगा तेरे बिना मैं?
न आती नींद तेरे बिन अब;
आ जा माँ, अब न रूठा हूँ,
तुझको मनाऊँगा इस बार।

अब जो देगी, वो खा लूँगा—
बिना मुँह बनाए या करे सवाल,
बस आ जा एक बार तू वापस,
हो जाए जीवन फिर निहाल।

हर दीपक में तेरा उजियारा,
हर छाया में तेरा ही रूप;
घर के हर कोने में तू,
मन में बसा तेरा ही स्वरूप।

ऐ माँ! फिर आज सुना दे कहानी,
जिसमें हों परियाँ, राजा-रानी;
मैं प्रतीक्षा करूँ तेरे आने की,
बिन तेरे सूनी तेरी हर निशानी।

कैसे समझाऊँ इस मन को मैं,
तू न लौटेगी इस बार?
समय की अविरल धारा में बहकर,
तू चली गई है उस पार।

अब जब भी आँखें मूँदता हूँ,
तेरा स्पर्श याद आता है;
माँ, तू मृत्यु से परे खड़ी है—
स्मृति तेरी अमर गाथा है।

मैं अब न तुझे पुकारूँगा,
न रोऊँगा अब बारंबार;
पर तू है हृदय में मेरे,
कैसे रोकूँ हृदय-उद्गार?

सच यह भी उतना ही है गहरा—
तू गई नहीं, बस बदल गई;
आँचल से आकाश बनी तू,
मुझमें ही फिर ढल गई।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का द्वितीय मोती

पिता का आशीर्वाद

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ पिता का मौन त्याग, अनुशासन और आशीष जीवनभर संतुलन और साहस का आधार बने रहते हैं।"

"पिता का आशीर्वाद" स्पंदन काव्य-शृंखला का द्वितीय मोती है, जिसमें पिता के मौन प्रेम, संघर्ष, अनुशासन और त्याग का अत्यंत आत्मीय चित्रण किया गया है।

इस रचना में पिता केवल परिवार के संरक्षक नहीं, बल्कि मार्गदर्शक, गुरु और जीवन-संघर्षों में दिशा देने वाली शक्ति के रूप में उभरते हैं। उनकी कठोरता के पीछे छिपा स्नेह, स्वयं अभाव सहकर परिवार को संबल देना, और संतानों के लिए निस्वार्थ समर्पण—कविता को गहरी संवेदनात्मक ऊष्मा प्रदान करता है।

यह कविता अंततः उस भाव तक पहुँचती है, जहाँ पिता भले ही देह से दूर हों, पर उनकी सीख, संस्कार और आशीर्वाद जीवनभर संतुलन, साहस और संरक्षण का आधार बने रहते हैं।

पिता का आशीर्वाद

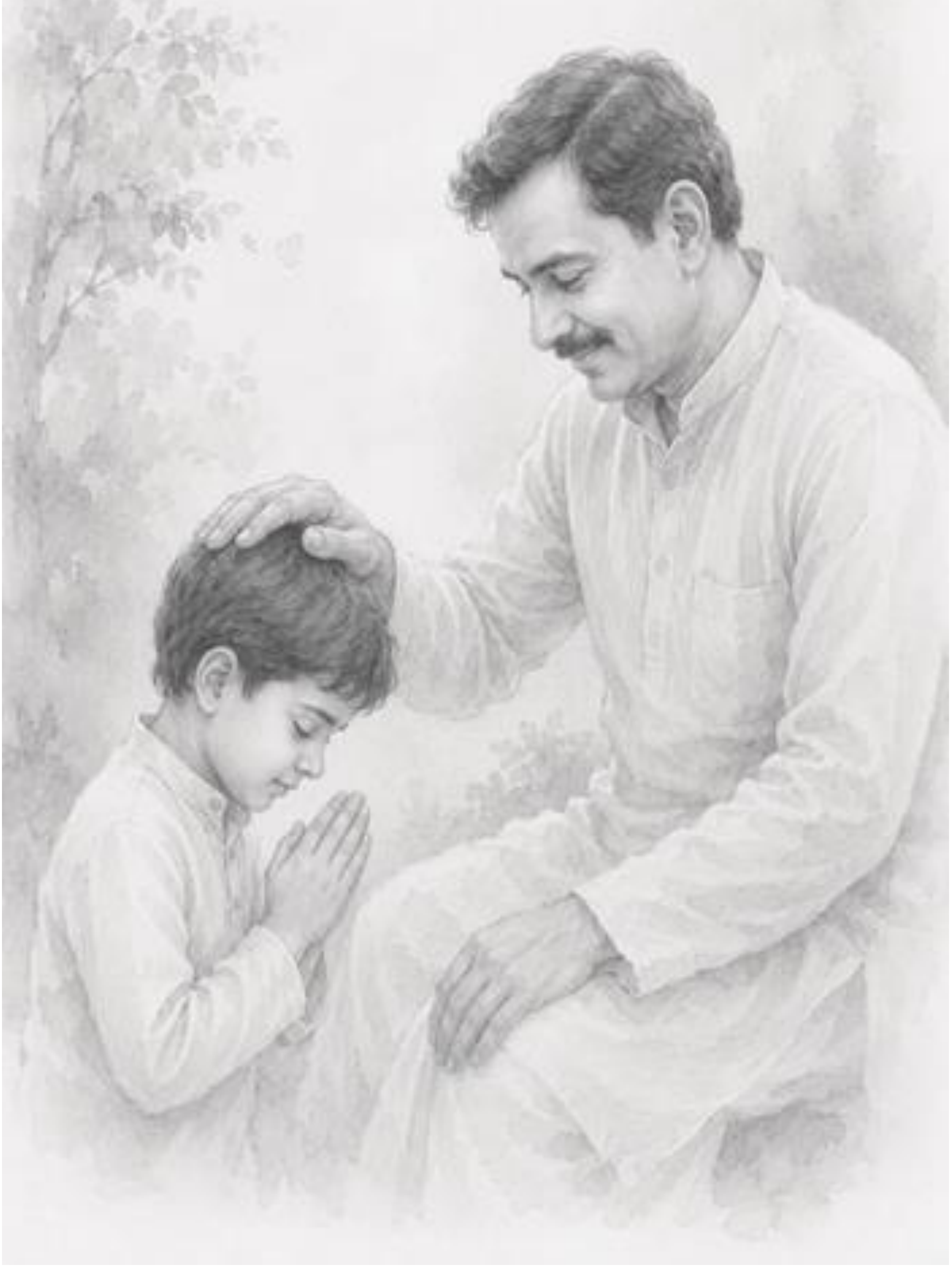

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का द्वितीय मोती

पिता का आशीर्वाद

कंधे पर जो रख दे हाथ,
तो पराक्रम जगा दे,
सिर पर फेरे जो अपना हाथ,
तो सोया भाग्य जगा दे।

मन में जब घिर आए तिमिर,
तो विश्वास का दीप जला दे,
भटके हुए अपने पुत्र को,
सही राह दिखा दे।

घर-परिवार के मध्य,
संतुलन जो लाता है,
गिरे जो मनोबल कभी तो,
हौसला बढ़ाता है।

हार के हर अंधेरे में,
जीत का सूर्य उगाता है,
कठोर वचनों के पीछे भी,
ममता जो छुपाता है।

अनुशासन की आंच में तपाकर,
कुंदन सा निखार दे,
भूखा रहकर भी जो पहले,
बच्चों को निवाला दे।

अपने सारे सपनों को जो,
उन पर ही वार दे,

जीवन के हर सिक्के का,
सही मोल समझा दे।

समय का मोल और कर्म का फल,
धैर्य का पाठ पढ़ाता है,
संघर्षों की इस भट्ठी में,
जीना हमें सिखाता है।

पिता और पुत्र का सच में,
बड़ा अनूठा नाता है,
पिता ही रक्षक, पिता ही गुरु,
वही भाग्य-विधाता है।
एक सत्य अटल है जग में,
जो हर जीवन दोहराता है—
पिता की छाया साथ रहे तो,
भाग्य स्वयं झुक जाता है।

और जिस दिन वो पास न हों,
तो उनकी सीख जगाती है,
हर निर्णय में, हर साहस में,
बस उनकी छवि मुस्काती है।

आज जब वो पास नहीं हैं,
हर बात बहुत याद आती है,
उनकी डाँट दुआ सी लगती,
उनकी खामोशी रुलाती है।

तपते रहे वो खुद ही धूप में,
हमें शीतल छाँव दिलाने को,
मुझसे कहते "चिंता मत कर",
बस अपनी फिक्र छुपाने को।

मेरी छोटी-छोटी खुशियों पर,
अपना सब कुछ वार गए,
मैं जीतता रहूँ दुनिया में,

इसलिए वो हर बार हार गए।

कभी कुछ नहीं कहते थे वो,
बस चुपचाप निभाते रहे,
मैं नादान समझ ना पाया,
वो उम्र भर समझाते रहे।

उनके बिना यह घर भी अब,
सिर्फ ईंट-दीवारें लगता है,
जिनसे था आबाद ये आंगन,
अब सब कुछ बेगाना लगता है।

पर उनकी दी हुई सीखें,
आज भी साथ निभाती हैं,
हर मुश्किल के मोड़ पर मुझको,
गिरने से बचाती हैं।

शत-शत नमन उस पिता को,
जो खुद मिटकर हमें बनाता है,
पिता महज एक रिश्ता नहीं,
वो जीवन-मार्ग सजाता है।

और जब भी आँखें भर आती हैं,
बस एक ही ख्याल सताता है—
काश! एक बार फिर वो हाथ,
मेरे सिर पर आ जाता...

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
(मनुष्य और उसका आत्मीय संसार)
शृंखला का तृतीय मोती
पैतृक घर

बचपन वाला घर, अपनेपन का आँगन
कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ बचपन की स्मृतियाँ, माता-पिता की छाया और अपनेपन का आँगन जीवन का सबसे अमूल्य आश्रय बन जाते हैं।"

"पैतृक घर — बचपन वाला घर, अपनेपन का आँगन" स्पंदन काव्य-शृंखला का तृतीय मोती है, जिसमें स्मृति, स्नेह और पारिवारिक संस्कारों की गहन अनुभूति व्यक्त हुई है।

यह कविता केवल एक घर का वर्णन नहीं, बल्कि उस आत्मीय संसार का चित्रण है जहाँ बचपन की हँसी, माता-पिता का स्नेह, मित्रों की यारी और अपनेपन की ऊष्मा जीवन की सबसे मूल्यवान निधि बनकर बसती है।

रचना यह भाव जगाती है कि घर केवल दीवारों का स्थान नहीं, बल्कि स्मृतियों, आशीर्वादों और संस्कारों का जीवित आश्रय होता है—जो जीवनभर मनुष्य को अपने मूल से जोड़े रखता है।

पैतृक घर

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का तृतीय मोती

पैतृक घर

बेशक पुराने हों उस घर के दरो-दीवार,
पर माता-पिता का घर कभी जर्जर नहीं होता।
यहाँ हर ईंट में, हर दीवार में बसा उनका साया है,
घर के हर कोने- कोने, आँगन में बसी उनकी दुआ है।

छत पर जो सोते थे चाँदनी रात में,
तारे भी आते थे उढ़ाने चादर साथ में।
कभी सहोदरों, कभी बंधुओं की बतकहियों में,
नींद आती थी तारे गिनते, सपने बुनने में।

चाहे लाख कमा लें, बना लें कई कोठियाँ,
पर उनमें वो बचपन वाली नींदें फिर कहाँ।
रखो तुम अपनी सारी दौलत-शोहरत एक तरफ,
माँ के आँचल-सा सुकून उसमे फिर कहाँ।

जब भी कभी टूटा है दिल ज़माने की ठोकरों से,
उस घर में जो मिले सुकून, वो कहीं और फिर कहाँ।

ज़िंदगी बीत जाती है कर्ज की किश्तों में,
इस नए मकान में वो पुरानी गूंज फिर कहाँ।

छूटे जो एक बार, फिर कहाँ मिलता वो ठिकाना,
बचपन का घर ही है तेरा असली खजाना,

भटकते रहो चाहे राहों में कितनी ही यहाँ पर,
आज नहीं तो कल तुम्हें घर लौट जाना है।
दोस्तों की यादें, यारी और अब की ज़िंदगी

समय जब भी मिले, घूम लिया करो बचपन की गलियों में,
शहरों की सड़कों पर मिलते वो यारों के जमघट फिर कहाँ।
यारों की यारी याद आती है वो बचपन वालों की,
पेशे में संग चलने वालों में वो दिलदारी फिर कहाँ।

अब न कभी निकलती है, चारपाई दीवार पार,
न होता चाँदनी रात या तारों का दीदार।
शहरों की हवा धुंधलिका-सी छाती है,
पूर्णिमा की चाँदनी भी धुंधला जाती है।

माता-पिता के आशीष से ही सदा, घर-घर है हुआ,
उनको दिलों में रखने वाला कब है बेघर हुआ।
घर तो वही है जहाँ माँ-बाप का आशीष है मिला,
दौलत से बनते हैं महल, उनसे मानस कब खिला,

जो पुत्र शीश नवाता उन्हें सुबह और शाम,
बन जाते उसके 'बिगड़े हुए', 'असंभव' सारे काम।

उनके आशीष से आगे बढ़ते कदम न कभी डगमगाएँ,
नित नई सफलताओं के द्वार स्वतः ही खुलते चले जाएँ।
जो उनकी शरण में रहते, उन्हें और क्या चाहिए;
जिन पर उनकी कृपा ठहरे, उन्हें कौन ठुकराए।

गर न हो मुमकिन वहाँ अब लौट पाना,
कम से कम अपना घर तुम ऐसा बनाना,
घर ऐसा जिसमें रह सकें सुकून से सब के सब,
दादी-बाबा जिसमें हँसे, खेलें पोते-पोतियों के संग।

गर वो भी न हो मुमकिन, तो एक वचन लो—
उन्हें अपने दिल में रखो, सदा उनके के दिल में रहो,
उनके ही चरणों में है जीवन का असली फ़लसफ़ा ,
रगों में जिनके उनकी सीख, वो फिर न कभी गिरा ।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का चतुर्थ मोती
परिवार

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ प्रेम केवल दो लोगों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरे परिवार को जोड़ने वाली आत्मीय ऊष्मा बन जाता है।"

"परिवार" स्पंदन काव्य-शृंखला का चतुर्थ मोती है, जिसमें प्रेम को उसके व्यापक पारिवारिक स्वरूप में अत्यंत आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस रचना में माता-पिता का वात्सल्य, भाई-बहनों का स्नेह, पति-पत्नी का मौन सामंजस्य और बच्चों की निश्छलता—सभी प्रेम के विविध रूप बनकर उभरते हैं। यहाँ प्रेम किसी एक संबंध तक सीमित नहीं, बल्कि पूरे परिवार को जोड़ने वाली अदृश्य संवेदना है।

यह कविता बताती है कि प्रेम का वास्तविक स्वरूप केवल आकर्षण नहीं, बल्कि पीढ़ियों तक चलने वाला अपनापन, उत्तरदायित्व और संस्कारों की निरंतरता है।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का चतुर्थ मोती

परिवार

स्नेह वो सुगंध है,
जो अरुणिमा की मधुरिम बेला में
मंदिर से जलती धूप के धूम्र से
घर भर जाती है; या माँ के हाथों का
बालक के केश व माथे पर स्पर्श,
जो प्रातःकाल नित उसे
निद्रा से जगा देता है।

या स्नेह वो पिता की डाँट है,
जो स्वयं पिता बनने पर
पिता के लिए क्रोध से बदल
श्रद्धा में परिवर्तित हो जाती है;

या वो दृष्टि,
जो सोते हुए बालक को देख
माता-पिता के हृदय को
आनंद से भर देती है।

या स्नेह वो है,
जो भाई को ससुराल में आया देख
बहन के हृदय को प्रफुल्लित कर देता है;
या भाई-बहन की उन्नति और उपलब्धि पर
सहोदरों की आँखों में प्रसन्नता से
डबडबा जाता है।

या प्रेम वो है,
जो सायं-काल की बेला में
पति-पत्नी के साथ चाय पीते समय
आँखों के मिलने पर अधरों को
कमल-पुष्प सा खिला देता है।

और यदि पूछा जाए कि,
क्या ये सभी
प्रेम की उस परिधि में आते हैं,
जो सात जन्मों के भीतर खिंची हो?

तो उत्तर यही है—
हृदय को विशाल करो,
परिधि यदि सात जन्म नहीं,
तो कम से कम
सात दशक तक विस्तृत हो।

जहाँ प्रेम की परिधि में
पत्नी भी रहे और माँ भी रहे,
और पत्नी में प्रेयसी जीवित रहे;
किसी कोने में पिता
गुलाब का वही पौधा
रोपता हुआ दिखे,
जिसे ननद गजरा बनाकर
भाभी की चोटी में गूँथे।

और अंततः वो बड़ा भाई,
जो प्रसन्न होकर तुझे गले से लगाए;
और वो नन्हें बच्चे जो प्रेम से
तेरे हाथों से निवाला खाएँ।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का पंचम मोती
मित्रता

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ बचपन की निश्छलता, साझा स्मृतियाँ और जीवनभर साथ चलने वाला अपनापन कभी पुराना नहीं होता।"

"मित्रता" स्पंदन काव्य-शृंखला का पंचम मोती है, जिसमें बचपन की स्मृतियों, आत्मीय संबंधों और सच्चे साथ की ऊष्मा का भावपूर्ण चित्रण किया गया है।

इस रचना में मित्र केवल साथी नहीं, बल्कि जीवन के हर मोड़ पर साथ चलने वाला आत्मीय संबंध बनकर उभरता है—कभी सहचर, कभी शुभचिंतक और कभी मौन संबल के रूप में।

बचपन की गलियाँ, खेल, शरारतें और साझा स्मृतियाँ कविता को सहज आत्मीयता प्रदान करती हैं। यह रचना अंततः यही अनुभव कराती है कि समय और दूरियाँ बदल सकती हैं, पर सच्ची मित्रता स्मृतियों और हृदय में सदैव जीवित रहती है।

मित्रता

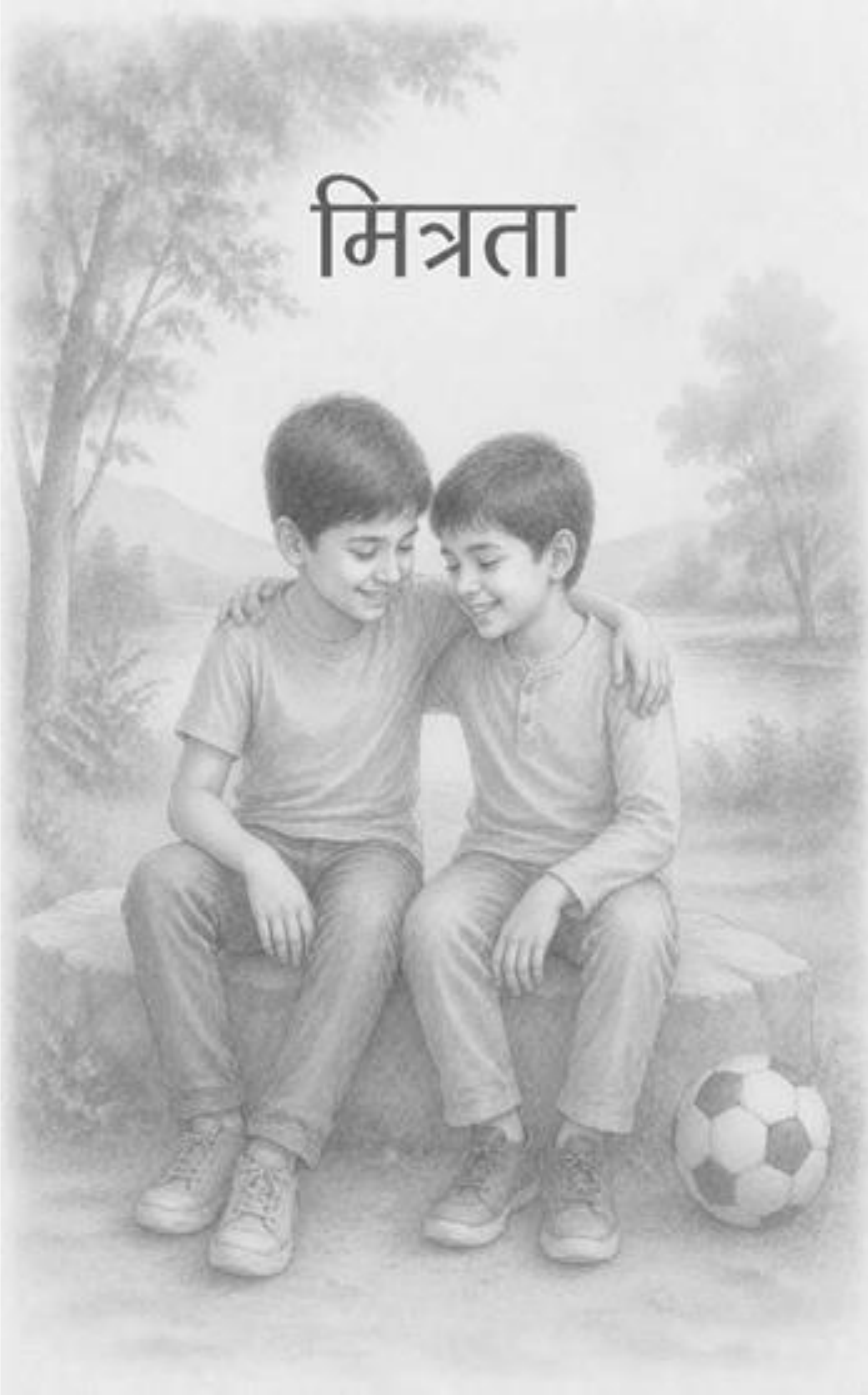

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का पंचम मोती

मित्रता

हो सखा, हो बंधु प्रिय,
हो मेरे तुम मित्र ऐसे—
जैसे सुवास पात्र मैं,
तुम उसमें बसी सुगंध जैसे।

हो अनुचर, हो सहचर,
कभी अनुज, कभी अग्रज जैसे,
कभी भ्राता सम स्नेहिल तुम,
कभी शत्रु बन सच कहने वाले।

जब जब पथ हुआ धुंधला मेरा,
तुमने ही अवलंब दिया,
डगमग होते जीवन को
अपनापन अविलंब दिया।

याद करो बचपन में हमने,
कितने दिन थे साथ बिताए;
पाठशाला भी साथ थे जाते,
गलियों में खूब उधम मचाते।

तुम पढ़ने में थे अव्वल,
मैं गढ़ने में अव्वल था;
तुम पाते थे पूरे अंक,
आधे में ही मैं प्रसन्न था।

तुम यदि थे कक्षा का गौरव,
कक्षा के प्राण मुझे कहते थे;
हम दोनों की अठखेलियों को,
गुरुजन नादानी समझ सहते थे।

चाची के हाथों का व्यंजन,
माँ के हाथों का आम का अचार;
मिल-बाँट कर खाते थे हम,
फिर करते गलियों में हुंकार।

साँझ हमारी अपनी होती,
खेल हमारे अपने थे;
कभी कंचे, कभी गुल्ली-डंडा,
साथ खेलते बल्ला-गेंद।

कभी लड़ाते पतंग के पेंच,
कभी आपस में लड़ लेते थे;
फिर खाना तक न हम खाते,
जब तक न एक दूजे को मनाते।

कभी सुनते थे डरावनी कहानियाँ,
जब संध्या में बिजली जाती थी;
दादी कभी हंसीं ठिठोली करती,
कभी कहानी सुनाकर डराती थीं।

धीरे धीरे बचपन से हमने,
किशोरावस्था में पग धरा;
थी आँखों में चमक कुछ करने की,
जीवन में आगे बढ़ने की।

लगी दौड़ फिर संसार भर की,
अपने सपनों को गढ़ने की;
कुछ पाने और कुछ करने की
इस समाज में कुछ बनने की।

धीरे-धीरे राहें बदलीं,
बदल गए फिर नगर-ठिकाने;
पर मन के उस कोने में अब भी,
जीवित हैं बचपन के तराने।

कभी पत्रों में कुशल-क्षेम पूछा,
अब यादों में संवाद बचे;
दूरी लाख सही जीवन में,
मन से फिर भी साथ में हैं।

जब भी जीवन की आपाधापी में,
मन भीतर से थक जाता है;
तो स्मृतियों के बंद झरोखे से,
बस तेरा ही बिंब मुस्काता है।

आओ किसी दिन फिर फुर्सत से,
हम लोक-व्यवहार को भूल चलें;
रख कर कंधे पर हाथ एक दूजे के,
उस निश्छल बचपन में लौट चलें।

लौट चलें बचपन की गलियों में,
चाहे यादों में ही संभव हो,
जहाँ स्वप्न सा वह बीता कल,
एक बार फिर अभिनव हो।

फिर बैठ किसी पुराने मोड़ पर,
घंटों यूँ ही बतियाएँ हम;
बीते वर्षों की धूल हटाकर,
कुछ भूले प्रसंग दोहराएँ हम।

न पद का मान, न आयु का बंधन,
न जग की कोई दीवार रहे;
बस तू, मैं और वही अपनापन,
जैसे कल की ही बात रहे।

जब तक नभ में चंद्र विराजित,
जब तक सूर्य में आभा है;
तब तक सच्ची मित्रता जग में,
ईश्वरीय-प्रेम की परिभाषा है।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का षष्ठम मोती
स्मृतिशेष

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ कुछ लोग दूर होकर भी स्मृतियों में जीवित रहते हैं और मौन उपस्थिति बनकर जीवन का हिस्सा बने रहते हैं।"

"स्मृतिशेष" स्पंदन काव्य-शृंखला का षष्ठम मोती है, जिसमें प्रेम और स्मृति के उस गहन संबंध का चित्रण किया गया है जो दूरी, समय और मृत्यु के बाद भी समाप्त नहीं होता।

यह रचना बताती है कि कुछ आत्मीय संबंध भले ही जीवन-पथ पर साथ न रह पाएं, पर वे स्मृति बनकर मनुष्य के निर्णयों, संवेदनाओं और एकांत में सदैव उपस्थित रहते हैं।

कविता अनुपस्थिति को रिक्तता नहीं, बल्कि एक ऐसी मौन उपस्थिति के रूप में देखती है, जो मनुष्य को भीतर से अधिक संवेदनशील, धैर्यवान और आत्मिक रूप से समृद्ध बना देती है।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का षष्ठम मोती

स्मृतिशेष

कुछ आत्मीय जन सदैव साथ नहीं रहते,
फिर भी अंतर्मन के समीप रहते हैं।
वे मधुर स्मृति बनकर हर एक निर्णय में,
चुपचाप हमारे संग चला करते हैं।

मृत्यु भी उनके अस्तित्व को मिटा नहीं पाती,
दृश्य से अदृश्य में बस ढाल देती है।
देह भले ही राख हो जाए चिता की अग्नि में,
आत्मा उसे अमर स्मृति में बदल लेती है।

कुछ लोग सामने न होने पर भी,
भीतर के एकांत में बस जाते हैं।
उनकी वह मौन अनुपस्थिति ही जैसे,
सँभलकर जीने का एहसास देते हैं।

प्रेम हमेशा केवल पा लेने में नहीं,
कभी-कभी मौन प्रतीक्षा में पलता है।
जहाँ समय का चक्र भी धीमा पड़ जाए,
पर अडिग विश्वास संग-संग चलता है।

वो यादों के झरोखे से झाँका करते हैं,
जब भी नयन चुपचाप नीर बहाते हैं।
यह 'स्मृतिशेष' जीवन की रिक्तता नहीं,
ये तो वो पल हैं जो अमर हो जाते हैं।

जहाँ दूरियों का कोई अर्थ नहीं बचता,
और विरह भी मिलन का वेश धर लेता है।
वहाँ किसी अपने का सदैव के लिए छूट जाना,
आत्मा का शाश्वत 'स्पंदन' बन जाता है।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का सप्तम मोती
घरौंदा

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ घर दीवारों से नहीं, बल्कि प्रेम, स्वतंत्रता और पीढ़ियों के संस्कारों से निर्मित होता है।"

"घरौंदा" स्पंदन काव्य-शृंखला का सप्तम मोती है, जिसमें घर और संबंधों के वास्तविक अर्थ का अत्यंत आत्मीय एवं दार्शनिक चित्रण किया गया है।

यह रचना बताती है कि घर केवल ईंट और दीवारों का स्थान नहीं, बल्कि वह आश्रय है जहाँ व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित, स्वतंत्र और स्वीकार किया हुआ अनुभव करता है। यहाँ प्रेम अधिकार नहीं, बल्कि ऐसा विस्तार है जो दो जीवनों को और व्यापक बना देता है।

कविता में माता-पिता के प्रति ऋण-बोध, पारिवारिक संस्कारों की निरंतरता और साझा स्मृतियों की ऊष्मा मिलकर यह अनुभव कराती है कि अंततः मनुष्य के जीवन में सबसे स्थायी आश्रय केवल प्रेम ही होता है।

स्मृतियाँ, संबंध और अपना घर
शृंखला का सप्तम मोती
घरौंदा

केवल एक छत तले रहना प्रेम नहीं,
एक ही छत के नीचे स्वतंत्र रह पाना प्रेम है।
जहाँ दो जीवन एक-दूजे को संकुचित नहीं करते,
बल्कि दो हृदय जुड़कर और विस्तार पाते हैं—
वही सच्चा 'घरौंदा' है।

दिन के अंत की थकान,
जब बिना कहे साझा हो जाती है;
तो समझो प्रेम अब केवल आदत नहीं,
जीवन का अटूट सहारा बन चुका है।

हम कभी चुका नहीं पाते,
माता-पिता के प्रेम का ऋण;
बस जीवन भर उस आशीष के योग्य
बनने का प्रयास करते हैं।
और यही समर्पण,
संबंधो को और परिपक्व बनाता है।

अंत में इस संसार से विदा होते हुए,
कुछ भी शेष नहीं बचता सिवाय प्रेम के;
वही जो हम बाँट सके जग में,
और वही जो हमें मिल पाया।

यह घरौंदा केवल ईंट-गारे की दीवारें नहीं,
यह तो पीढ़ियों के संस्कारों की धरोहर है।
जहाँ दीवारें भी साँस लेती हैं हमारे साथ,
और हर कोना हमारी स्मृतियों का सरोवर है।

जब देह का यह भवन एक दिन ढह जाएगा,
और समय की राख में सब कुछ मिल जाएगा;
तब भी इस घरौंदे में जिया गया वह सच्चा प्रेम,
आत्मा का शाश्वत 'स्पंदन' बन लहराएगा।

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

भाग ३ : समाज, संघर्ष और आत्मबोध

<u>“भीतर के मनुष्य को बचाए रखने का संघर्ष।”</u>

भाग ३ :
समाज, संघर्ष और आत्मबोध

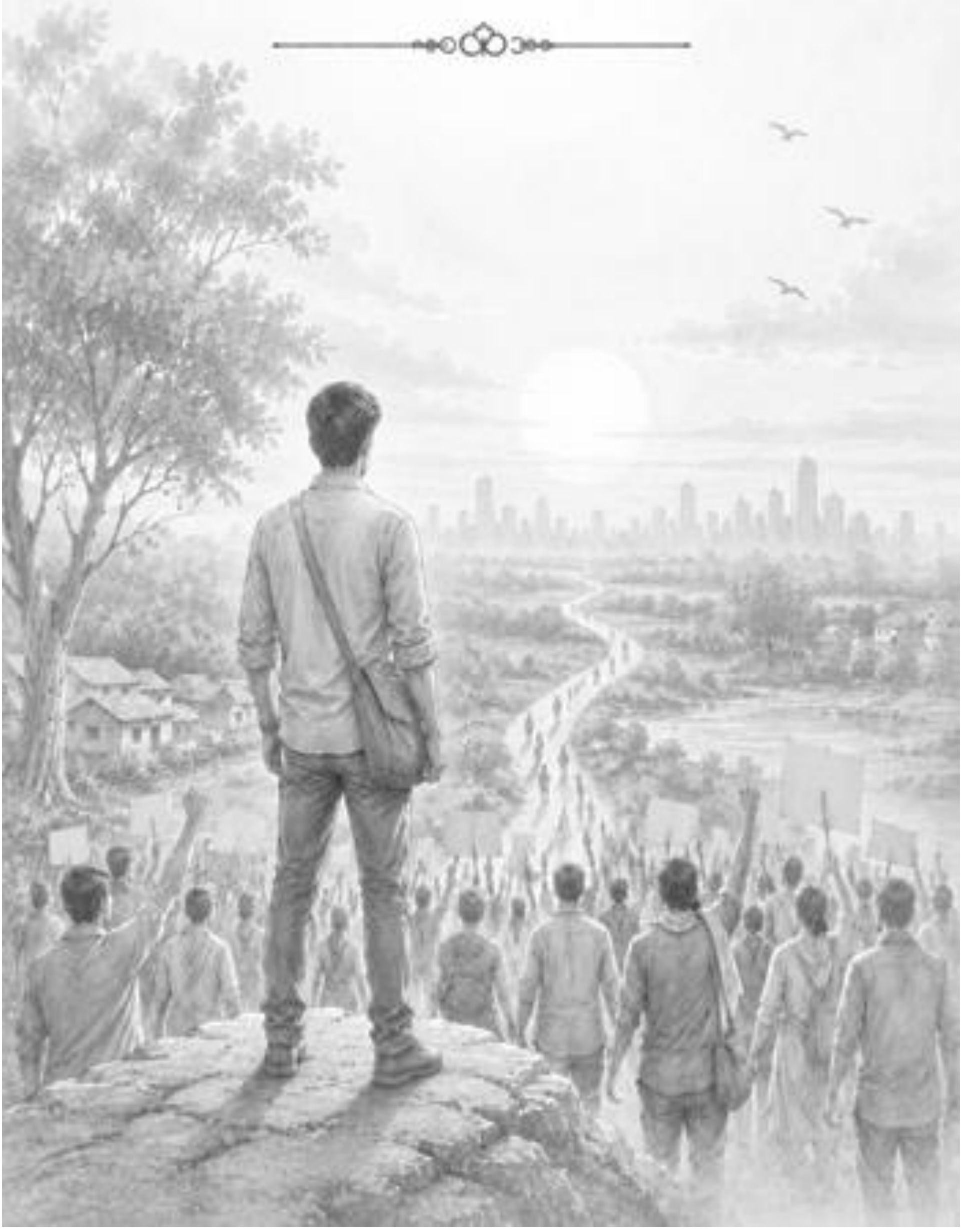

भाग ३ : समाज, संघर्ष और आत्मबोध

रस-भूमिका

जीवन केवल प्रेम और स्मृतियों का संसार नहीं; वह संघर्ष, भ्रम, मोह, स्वार्थ और आत्म-संघर्ष की यात्रा भी है।

मनुष्य जब संसार की भीड़ में स्वयं को खोजने लगता है, तभी आत्मबोध की प्रक्रिया आरम्भ होती है।

इस भाग की रचनाएँ बाहरी संसार से अधिक भीतर के मनुष्य का चित्रण करती हैं।

यहाँ संबंधों की वास्तविकता है, समय का कठोर सत्य है, नैतिक संघर्ष है, और उस 'ज़मीर' को बचाए रखने का प्रयास है जो मनुष्य को भीतर से जीवित रखता है।

इन कविताओं में वैचारिक गहराई के साथ वैराग्य, चिंतन और आत्मदर्शन का प्रवाह है।

यह भाग पाठक को यह अनुभव कराता है कि संसार बदल सकता है, लोग बदल सकते हैं, पर अंततः मनुष्य के साथ उसके कर्म, सत्य और अंतर्मन ही रहते हैं।

भाग ३ : समाज, संघर्ष और आत्मबोध

काव्य-शृंखला – सूची

1. आत्म दर्पण
2. कि ज़मीर अभी जिंदा है

समाज, संघर्ष और आत्मबोध
शृंखला की प्रथम अनुभूति
आत्म दर्पण

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ मनुष्य बाहरी संसार की भीड़ में स्वयं को खोजते हुए कर्म और सत्य के वास्तविक मूल्य को पहचानता है।"

"आत्म दर्पण" स्पंदन काव्य-शृंखला की प्रथम अनुभूति है, जिसमें आत्मचिंतन, मानवीय संबंधों की वास्तविकता और जीवन-दर्शन का गहन चित्रण किया गया है।

इस रचना में कवि प्रतीकात्मक शैली में दिखाता है कि जब मनुष्य स्वयं को बाहरी दृष्टि से देखने लगता है, तब उसे संबंधों, स्वार्थ और सामाजिक आडंबरों का वास्तविक स्वरूप दिखाई देने लगता है।

कविता अंततः इस बोध तक पहुँचती है कि संसार की भीड़ और बदलते संबंधों के बीच यदि कुछ स्थायी रहता है, तो वह मनुष्य के कर्म और उसका सत्य ही है।

समाज, संघर्ष और आत्मबोध
शृंखला की प्रथम अनुभूति
आत्म दर्पण

मेरी आत्मा निकल कर घूमने लगी,
कौन अपना-पराया खोजने लगी
लोग देख कर जैसे अनदेखा करें,
मुझे क्या पता क्यूँ वो ऐसे करें

मेरी पत्नी मुझे जब निहारने लगी,
ध्यान से देखा तो पता यूं चला
मेरे पीछे सजी है जो सुंदर घड़ी,
उस पर ही थी उसकी नजरें गड़ी।

ज़िंदगी भर जो गुमान हमको ये था,
बस इसी पल ये देख कर है मिटा
लोग हमें नहीं, समय को आँकते रहे;
कीमत वक़्त की थी— हम ही भूलते रहे।

पीछे जो थे, आए आगे और चले गए
बिन छुए ही मन को, भीतर से गए
जिससे पूछा वही हमें आज व्यस्त लगा,
जाना-पहचाना हर चेहरा मुझे सख़्त लगा

रेखा अपने-पराये की धुंधलाने लगी
साथ चलने वालों की परछाईं अनजानी लगी।
हर डगर हर गली जब बेईमानी लगी
तब साथ केवल कर्मों की कहानी लगी

दी थपकी किसी ने तो सहसा जागा मैं,
जाने क्यों सपनों के पीछे था भागा मैं?
लगा जिंदा तो हूँ पर इसका नहीं कोई मोल,
कर्म ऐसे करूँ जो हों सच में अनमोल।

टूट कर मोह का जब भरम मिट गया,
सत्य का मानो दर्पण जो सम्मुख हुआ।
ना कोई रंज अब, ना कोई आस है,
मन में वैराग्य का मौन एहसास है।

लौट कर फिर चलें उसी ओर हम,
छोड़ आए जगत के सभी शोर हम।
भीड़ संसार की पीछे रह सी गई,
बूँद जैसे समंदर में मिल सी गई।

समाज, संघर्ष और आत्मबोध
शृंखला की द्वितीय अनुभूति
कि ज़मीर अभी जिंदा है

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ संघर्षों, छल और विडम्बनाओं के बीच भी मनुष्य अपने भीतर की इंसानियत को बचाए रखने का प्रयास करता है।"

"कि ज़मीर अभी जिंदा है" स्पंदन काव्य-शृंखला की द्वितीय अनुभूति है, जिसमें आत्मसम्मान, नैतिकता और मानवीय संवेदना का प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

यह कविता दिखाती है कि संसार के छल, संबंधों की विडम्बनाओं और संघर्षों के बीच भी मनुष्य यदि सत्य, संवेदना और ईमानदारी को जीवित रखे, तो उसका वास्तविक अस्तित्व बना रहता है। कवि 'रीढ़', 'चेहरा' और 'परछाई' जैसे प्रतीकों के माध्यम से नैतिक साहस और आत्मबोध को व्यक्त करता है।

रचना आगे बढ़ते हुए यह अनुभव कराती है कि जीवन में घाव अपने भी देते हैं और सहारा कई बार अपरिचित लोग बन जाते हैं। अंततः कविता कटुता से ऊपर उठकर कृतज्ञता, करुणा और इंसानियत की ओर पहुँचती है, जहाँ ज़मीर ही मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान बन जाता है।

समाज, संघर्ष और आत्मबोध शृंखला की द्वितीय अनुभूति

कि ज़मीर अभी जिंदा है

मेरी परछाई जब साथ हो मेरे,
तो एक विश्वास सा रहता है-
मैं अभी जिंदा हूँ,
हाँ कि ज़मीर अभी मरा नहीं।

रीढ़ की हड्डी अभी महसूस होती है
तो एक आस सी रहती है
कि मैं साथ दे सकता हूँ, सत्य का
कि सत्य कभी मिटा नहीं

चेहरा एक ही है मेरा,
तो एक यकीन सा रहता है कि;
झूठ अभी मेरा हमदम,
हमसाया मेरा बना नहीं।

गलती करता हूँ मैं मानता हूँ,
पर काम गलत नहीं होने देता;
कि इंसानियत अभी जिंदा है,
अंदर का इंसान अभी मरा नहीं।

मेरे जाते ही लोग करते हैं कानाफूसी,
कि जानते हैं सामने से हराना है मुश्किल;
रचते हैं षड्यंत्र पीठ पीछे ही मेरे,
कि जानते हैं दिल से बुरा नहीं हूँ मैं।

जिसे भी शक हो नजरें मिलाकर देखे,
न कर दूँ इन आँखों का कायल तो कहना;
सच जिन आँखों में हो उनका कौन
कोई बेगैरत कभी कातिल हुआ है।

कभी किसी शाम हम प्याला बन के देखो,
कि साकी भी तुम्हें न मिला होगा ऐसा;
मय को जो नापे सिर्फ अपनी नजरों से,
पैमाने की ज़रूरत क्या है मयखाने में।

कि रोम-रोम कर्ज में डूबा है मेरा,
अपनों के इतने एहसान हैं मुझपर;
ये वही अपने हैं मेरे हमदम हमसाये,
जो वसूलने को ब्याज मुझे रोज़ नीलाम करते हैं।

दर्द कोई दे न सका
जिंदगी भर दुश्मन बन के,
ये मेरे लोग ही हैं जो
घावों पे नमक मलते हैं;

चला जाता हूँ कुछ गैरों में
जब भी मन करता है,
वो दोस्त ही हैं जो
मरहम का काम करते हैं।

सोचता रहता हूँ मैं कि
कहाँ रहता है वो,
जिसकी बनाई दुनिया में
खुशी और गम आते-जाते हैं;

शुक्र है उस ऊपरवाले का जिसने
बनाए कुछ चुनिंदा चेहरे,
हमसे मिलकर सही राह दिखाने को
जहां हम इंसानियत कि मिसाल बनें

उसका हर बार स्वयं आना कठिन था शायद,
इसलिए कभी माँ-बाप में,
कभी भाई-बहनों में,
कभी दोस्तों में नजर आता है।

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

भाग ४ : राष्ट्र, स्वाभिमान और अमर गाथाएँ

“जहाँ राष्ट्रप्रेम, स्वाभिमान और बलिदान अमर गाथाओं में स्पंदित होते हैं।”

भाग ४ :
राष्ट्र, स्वाभिमान और अमर गाथाएँ

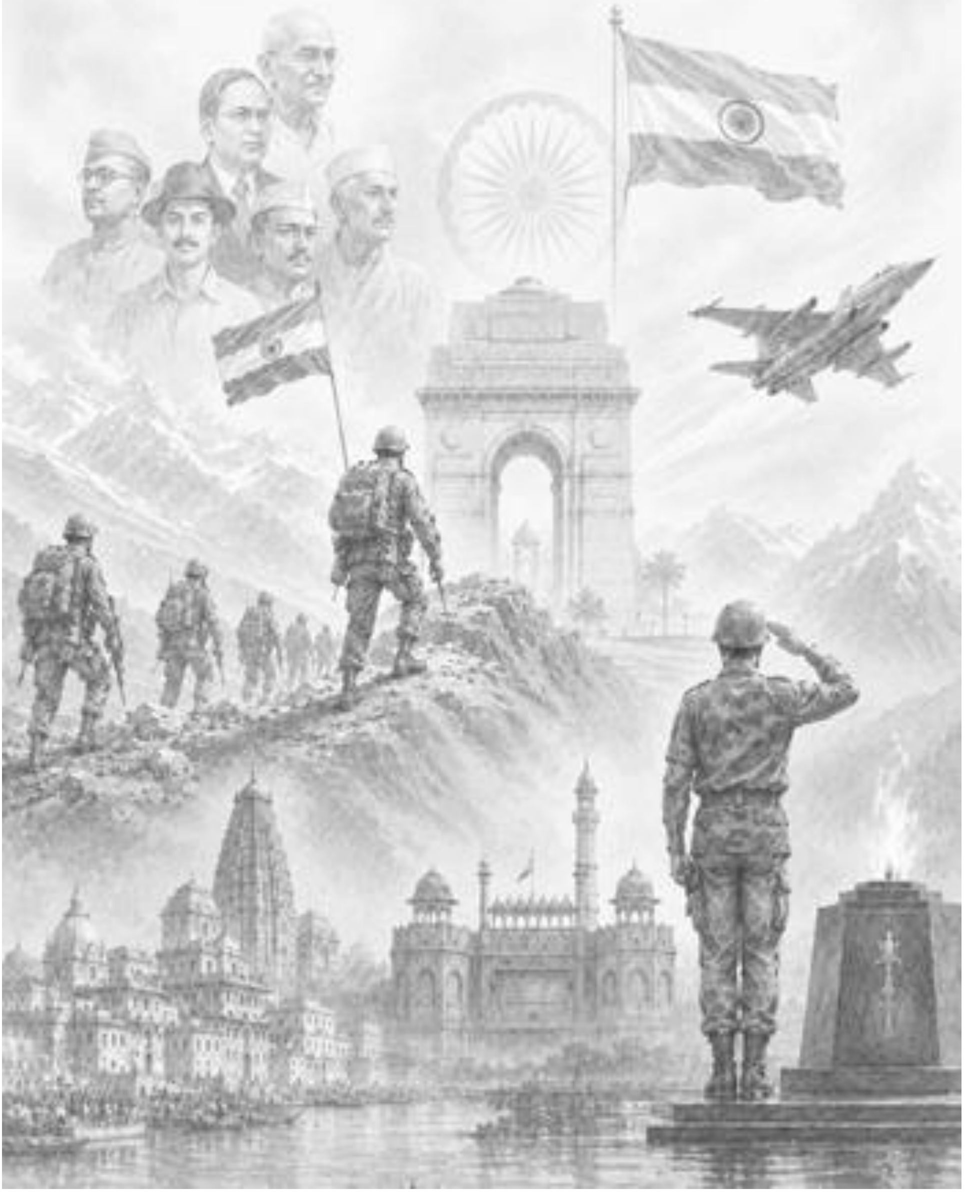

भाग ४ : राष्ट्र, स्वाभिमान और अमर गाथाएँ

रस-भूमिका

जिस भूमि ने जन्म दिया, जिसने संस्कृति, स्वाभिमान और अस्तित्व प्रदान किया—उस राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता ही राष्ट्रभाव का प्रथम स्वर है।

जब यही भावना साहस, त्याग और बलिदान से जुड़ती है, तब अमर गाथाएँ जन्म लेती हैं।

इस भाग की रचनाएँ भारत की उसी चेतना को प्रणाम हैं।

यहाँ जनजातीय वीरों का अदम्य स्वाभिमान है, विस्मृत इतिहास का पुनर्जागरण है, और भारतीय सैनिक का मौन तप व बलिदान है।

इन कविताओं में राष्ट्र केवल भौगोलिक सीमा नहीं, बल्कि एक जीवित आत्मा के रूप में उपस्थित है।

वीर, रौद्र और ओज रस के साथ यहाँ करुण और गौरव रस भी समान रूप से प्रवाहित हैं।

यह भाग पाठक के भीतर राष्ट्रप्रेम, आत्मगौरव और कर्तव्यबोध का वह स्पंदन जागृत करता है, जो पीढ़ियों तक जीवित रहता है।

भाग ४ : राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ

काव्य-शृंखला – सूची

1. जननायकों का जयघोष
2. राष्ट्र रत्न की खोज में
3. सैनिक : एक शौर्यगाथा

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की प्रथम गाथा
जननायकों का जयघोष

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ जनजातीय वीरों का साहस, स्वाभिमान और मातृभूमि के प्रति समर्पण अमर गाथा बनकर गूँजता है।"

"जननायकों का जयघोष" स्पंदन काव्य-शृंखला की प्रथम गाथा है, जिसमें जनजातीय वीरों के अदम्य साहस, स्वाभिमान और राष्ट्रभक्ति का ओजपूर्ण चित्रण किया गया है। यह रचना उन वीरों का स्मरण करती है जिन्होंने जंगलों, पर्वतों और अपनी मिट्टी से जुड़े रहते हुए भी अन्याय और दासता के विरुद्ध निर्भीक संघर्ष किया।

कविता में बिरसा मुंडा, टंट्या भील, सिद्धू-कान्हू और रानी दुर्गावती जैसे जननायकों को भारत की अस्मिता और स्वाभिमान के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रकृति भी उनके संघर्ष की साक्षी बनकर दिखाई देती है—मानो पर्वत, वन और नदियाँ स्वयं उनके पराक्रम का जयघोष कर रही हों।

यह रचना जनजातीय गौरव, स्वतंत्रता-चेतना और राष्ट्रप्रेम का ओजस्वी स्तवन है, जो पाठक के भीतर साहस, स्वाभिमान और मातृभूमि के प्रति सम्मान की भावना जागृत करती है।

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की प्रथम गाथा

जननायकों का जयघोष

जनजाति नहीं, जननायक हैं ये,
भारत की शान, राष्ट्र की ढाल हैं ये।
पर्वत की गोद में, जंगल की छाँव में,
मिट्टी से जुड़ी अस्मिता की ठाँव में।

भारतमाता के लिए हृदय में जुनून,
राष्ट्र को देता सच्चा सुकून।
जहां गूंजते हों बिरसा के गीत,
स्वाभिमान ही बने हर मन का मीत।

न धन की चाह, न पद की प्रीत,
टंट्या भील हों या बिरसा की रीत।
जननायकों की एक ही नीत —
स्वाभिमान से मिलती हर रण में जीत।

गूंज उठा रण का नगाड़ा जोर,
वनवासी अब न रहेगा मौन और।
धधक उठा है रक्त का ज्वार,
अन्याय न सहेगा, लड़ेगा बार-बार।

धूप सही, वर्षा झेली,
पर आत्मसम्मान की न दी तिलांजलि ।
जंगल-जंगल गूंजा नारा —
"जनजाति लड़ेगा, न रुकेगा दोबारा!"

हे हिमालय, हे गंगा की धार,
नर्मदा, ब्रह्मपुत्र की लहरें अपार।
साक्षी बनो इस पावन युद्ध के,
भारत के सपूत, अमर हैं सदा के।

जनजातीय गौरव, देशभक्ति की धारा,
हर दिल में गूंजे "जय भारत" का नारा।
न झुकेगा सिर, न टूटेगा विश्वास,
वीरों की गाथा, सनातन आकाश।

हर कण में स्वाभिमान का बल,
हर वनवासी हृदय, राष्ट्र का फल।
सिद्धू-कान्हू की गाथा गाते हम,
मातृभूमि हो अजेय, संकल्प प्रथम।

रानी दुर्गावती हों या प्रताप महान,
हर जननायक है भारत की जान।
सरदार शंकरिया, या हों शाह मनीक,
इनके पराक्रम से काँपे अन्यायी की नींव।

मृत्यु भी न डिगा सकी इनका स्वभाव,
धधकता रहा सदा क्रांति ज्वार-भाव।
सनातन तेज से जगमग यह धरा,
जनजातीय स्वाभिमान बने भारत की पहचान।

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की द्वितीय गाथा
राष्ट्र रत्न की खोज में

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ विस्मृत इतिहास फिर जागता है और वीरों की स्मृति राष्ट्र-चेतना को पुनः प्रज्ज्वलित करती है।"

"राष्ट्र रत्न की खोज में" स्पंदन काव्य-शृंखला की द्वितीय गाथा है, जिसमें इतिहास, स्मृति और जन-जागरण का ओजस्वी संगम दिखाई देता है। यह कविता बताती है कि वीरों की गाथाएँ समय की धूल में दब सकती हैं, पर कभी समाप्त नहीं होतीं; जागृत चेतना उन्हें पुनः जीवित कर देती है।

रचना में सह्याद्रि, रायगढ़ और छत्रपति शिवाजी की समाधि के माध्यम से उस विस्मृत स्वाभिमान का चित्रण हुआ है, जिसे ज्योतिबा फुले जैसे जन-जागरण के अग्रदूत पुनः प्रज्ज्वलित करते हैं। यहाँ पुष्प-अर्पण केवल श्रद्धा नहीं, बल्कि स्वराज्य और राष्ट्र-चेतना के पुनर्जागरण का प्रतीक बन जाता है।

यह कविता स्मृति, स्वाभिमान और राष्ट्रधर्म का ओजपूर्ण स्तवन है, जो पाठक को यह अनुभव कराती है कि सच्चे वीर इतिहास में नहीं, पीढ़ियों की चेतना में जीवित रहते हैं।

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की द्वितीय गाथा

राष्ट्र रत्न की खोज में

अनुपम ऐतिहासिक संध्या थी,
सन अठारह सौ उनहत्तर,
सह्याद्रि की शिलाओं पर जब,
साँझ उतर आई थी,

पुनर्जागरण करने को,
एक वीर ने शपथ खाई थी
रायगढ़ की प्राचीरों में,
राष्ट्र-गौरव ने ली अंगड़ाई थी।

झाड़ियों में ढँकी स्मृति,
महल के अंतर में,
पत्थरों के हृदय में,
विजय-ध्वज गड़ा था।

समय की धूल तले,
समाधि की ओट में
एक मराठा नर सिंह,
शांति में सोया पड़ा था।

चले एक महात्मा ,
खोजने वीरत्व को
ढूँढ़ने चले राष्ट्र-सपूत,

मराठा गौरव को
हृदय में प्रश्न, मन में
अटल संकल्प पाले
अन्याय की सांकल तोड़ने,
चला वह शिव-आशीष लेने

महान ज्योतिबा फुले जिन्होंने,
जन-मन में स्वाभिमान जगाया था;
भारत की सोयी अस्मिता जगा वह,
जन-जन सुराज लाने आया था।

चढ़े सह्याद्रि की सीढ़ियाँ,
स्वयं से फिर संवाद किया,
कहाँ मौन है स्वराज्य-स्वप्न,
छत्रपति वीर शिवाजी कहाँ?

सोये हुए सिंह वीर शिवा की,
समाधि पुष्प-पल्लवित की
यह केवल पुष्प अर्पण न था,
बात थी जन-चेतना दीप्ति की ।

धूल जमी थी शताब्दियों की,
प्राचीरें थी मौन पड़ी,
सह्याद्रि की चट्टानों में,
वीरता चिर-निद्रा मे सोई पड़ी।

झाड़ियों में ढँकी हुई थी,
स्वराज्य की वह ज्वाला प्रखर,
मानो इतिहास की आँखों पर,
छाया हो विस्मृति का अँधड़ ।

पर समय ने फिर करवट ली,
एक चेतन स्वर गूँजा था—
"उठो, कि स्मृति का सूर्य
अभी पूर्णतः अस्त न हुआ।"

तब किसी ने श्रद्धा से,
पत्थरों को फिर स्पर्श किया,
और मौन समाधि के ऊपर,
आस्था का अर्घ्य अर्पित किया।

हर पंखुड़ी में प्रण था छिपा,
हर पल्लव में था आह्वान—
"स्वराज्य केवल अतीत नहीं,
यह वर्तमान का भी सम्मान।"

सह्याद्रि की घाटी मे गूँजा ,
शंखनाद-सा दृढ़ आदेश
"वीर कभी मरते नहीं हैं,
बनते हैं युग-युग संदेश।"

इतिहास अमर हो जाता है,
तेज राष्ट्र-दीप बन जाता है
वीर कहीं ओझल नहीं,
उन्हें वीर पा लेते हैं ।

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की तृतीय गाथा
सैनिक : एक शौर्यगाथा

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ सैनिक का त्याग, साहस और राष्ट्रनिष्ठा भारत की आत्मा का अमर प्रहरी बनकर उभरता है।"

"सैनिक : एक शौर्यगाथा" स्पंदन काव्य-शृंखला की तृतीय गाथा है, जिसमें भारतीय सैनिक के साहस, अनुशासन, त्याग और राष्ट्रभक्ति का ओजस्वी चित्रण किया गया है। यह रचना सैनिक को केवल सीमा-रक्षक नहीं, बल्कि राष्ट्र की अस्मिता और जन-जन के विश्वास के प्रहरी के रूप में प्रस्तुत करती है।

कविता में हिमालय की चोटियों, मरुभूमि की तपती रेत और रणभूमि के संघर्षों के माध्यम से सैनिक के तप, कर्तव्य और बलिदान को उभारा गया है। यहाँ सैनिक का साहस जितना प्रेरक है, उतना ही उसका मौन त्याग और परिवार से दूर रहकर निभाया गया कर्तव्य मार्मिक भी है।

यह रचना वीर, करुण और गौरव रस का प्रभावशाली संगम है, जो पाठक के भीतर राष्ट्रभक्ति, स्वाभिमान और भारतीय सैनिकों के प्रति गहरा सम्मान जागृत करती है।

सैनिक : एक शौर्य गाथा

राष्ट्र-स्वाभिमान की अमर गाथाएँ
शृंखला की तृतीय गाथा
सैनिक : एक शौर्यगाथा

भाग – १ : प्रहरी

हे अग्रज, मैं अनुज तुम्हारा,
तुम आदर्श, मैं अनुचर तुम्हारा।
तुम्हारी कीर्ति रहे सदा महान,
यश का हो नित्य अमिट सम्मान।

तुम प्रहरी हो स्वाभिमान के,
तुम रक्षक जन-जन के प्राण के।
जब-जब तिरंगा नभ में लहराए,
पहले स्मरण तुम्हारा आए।

मत पूछो, किस अग्नि में तपकर
यह वज्र-हृदय तैयार हुआ है;
किस तप, त्याग, बलिदान से
यह भारत फिर साकार हुआ है।

भारत-भूमि रक्षण का प्रण,
रहे सुरक्षित जन-गण-मन।
रण में धैर्य, हृदय में त्याग,
मातृभूमि से अमिट अनुराग।

देशहित रहे सदा सर्वोपरि,
समुद्र तल हो या हिम गिरि।

तुम-सा अतुलित बली न दूजा,
विषम परिस्थिति — कर्म ही पूजा।

मात्र तलवारों की चमक नहीं,
संकल्पों की ज्वाला हो तुम;
वीरत्व के समस्त गुणों की
पिरोई हुई-सी माला हो तुम।

तुमसे ही उत्सव है भू पर,
सुरक्षित सिंधु और हिमाचल;
तुमसे निर्भय नभ का विस्तार,
तुमसे गौरवशाली भारतवर्ष।

भाग – २ : रण

जब-जब संकट घिरा देश पर,
शत्रु बढ़ा अभिमान लिए;
तब-तब भारत माँ ने जन्मे
ऐसे रणधीर वीरत्व लिए।

जिनके उर में ज्वाला जलती,
पर नेत्रों में करुणा रहती;
जो रण में बन जाते काल,
वीरता रग-रग में बहती।

वे मृत्यु देखकर हँसते हैं,
वे वज्र-प्रहार स्वयं सहते;
पर तिरंगे की आन बचाने
अंगारों पर भी चल देते।

सीमा की हर शीत रात्रि में
जिनका तन न कंपित होता;
मरुभूमि की जलती रेतों पर
जिनका धैर्य न विचलित होता।

नभ में गर्जित युद्ध-विमानों से
जिनका उत्साह नहीं डिगा;
सागर की प्रचंड लहरों में भी
वीरों के सम्मुख कौन टिका?

जब रणभेरी नभ में गूँजे,
धड़कन भी हुंकार बने;
मातृभूमि की रक्षा हेतु
रक्षक स्वयं हथियार बने।

कोई कारगिल शिखरों पर
अंतिम श्वास तलक अड़ा;
कोई सीमा की चौकी पर
गिरि-सम सचेत अटल खड़ा।

घर की स्मृतियाँ हृदय में रखकर,
प्रियजनों से दूर हुए;
माता-पिता, पत्नी, संतानों के
स्नेह-पाश से विलग हुए।

ज्ञात उन्हें बस इतना ही—
सर्वप्रथम भारत का मान;
अपने सुख-दुःख बाद में आते,
प्रथम पूज्य मातृभूमि महान।

भाग – ३ : अमर

हे वीरों! तुमसे ही ऊँचा
इस धरती का मस्तक है;
तुमसे निर्भय सीमा रेखा,
तुमसे सुरक्षित राष्ट्र-भविष्य है।

जब तक गंगा की धारा में
अमृत-सम निर्मल जल होगा;
तब तक भारत के प्रहरी का
अमर ज्योति-सा यश होगा।

जब-जब इतिहासों की गाथा में
भारत का गौरव गाया जाए,
तो प्रथम पंक्ति में वीर जवानों
का ही नाम सुनाया जाए।

जो अपने लहू से इतिहासों में
भारत का भविष्य स्वर्णिम कर जाते;
आओ, श्रद्धा-सुमन अर्पित कर
नव पीढ़ी को बलिदान सुनाते।

हे वीर! तुम्हारे चरणों की धूल ने
इस धरती का अभिषेक किया;
तुम्हारे रक्त की प्रत्येक बूँद ने
भारत का गौरव दीप्त किया।

तुम जीवित हो
सीमा पर लहराते ध्वज में,
माताओं की निश्चिंत निद्रा में;
विद्यालयों की प्रार्थनाओं में,

बालकों के निर्भय स्वप्नों में।

जब तक नभ में सूर्य उपस्थित,
जब तक गंगा का जल बहेगा;
तब तक भारत की सीमा पर
हर प्रहरी निर्भय, अडिग रहेगा।

इतिहासों के स्वर्णाक्षर में
प्रथम नाम उनका आएगा;
जिसने हँसकर प्राण दिए,
भारत सिर ऊँचा उठाएगा।

स्पंदन - विभिन्न रसों की अनुभूति

भाग ५: प्रकृति , शिव और शांति

"जहाँ शब्द मौन हो जाते हैं"

भाग ५ :
प्रकृति, शिव और शांति

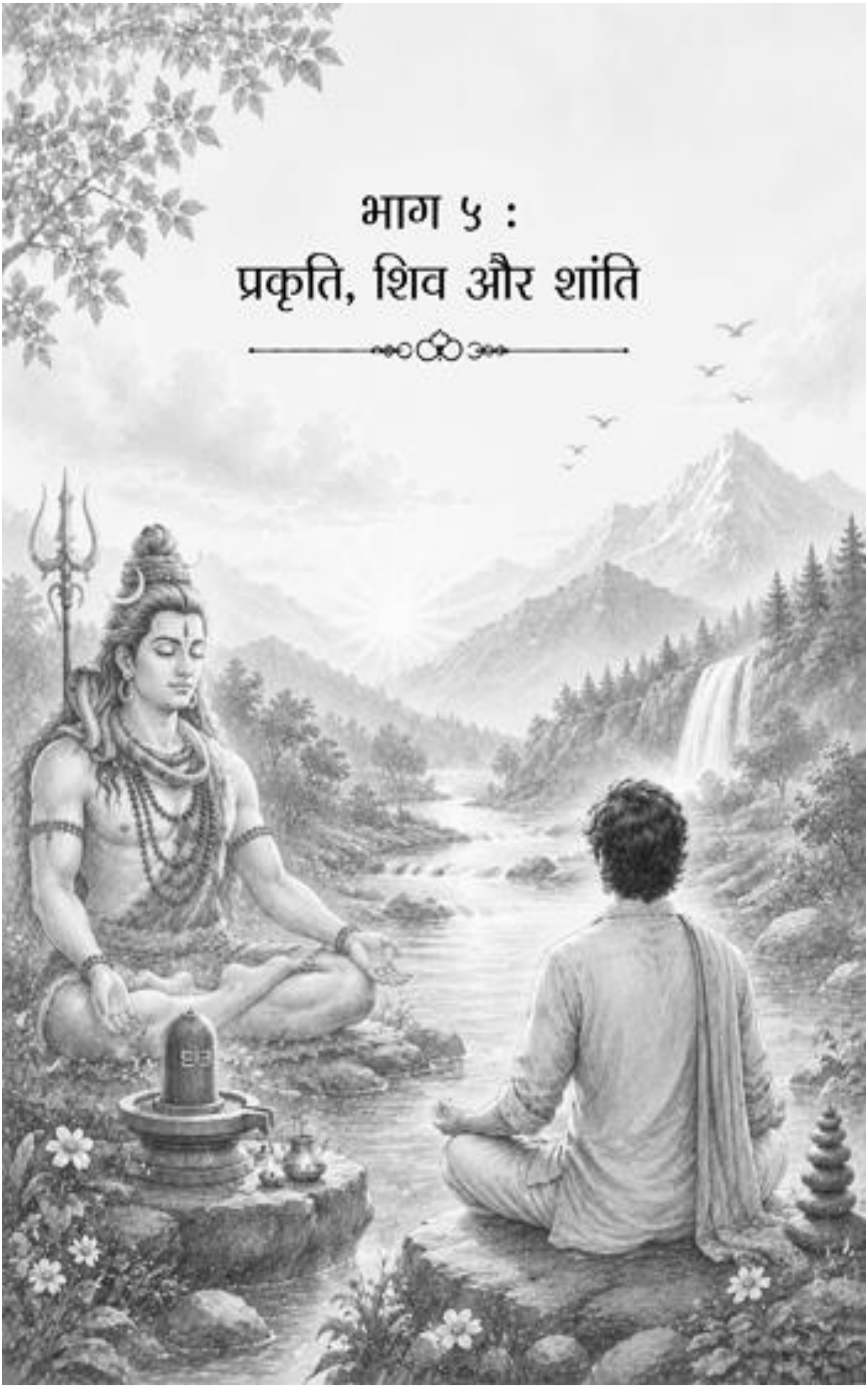

भाग ५ : प्रकृति, शिव और शांति

रस-भूमिका

जब मनुष्य प्रेम, स्मृति, संघर्ष और जीवन की समस्त यात्राओं से गुजर लेता है, तब उसके भीतर एक अंतिम प्रश्न जन्म लेता है—

"मैं कौन हूँ?"

और उसी प्रश्न से प्रारंभ होती है आत्मा की यात्रा।

इस भाग की रचनाएँ बाहरी संसार से भीतर की चेतना की ओर बढ़ती हैं।

यहाँ प्रकृति केवल दृश्य नहीं, बल्कि दिव्यता का अनुभव है; तीर्थ केवल स्थान नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि के प्रतीक हैं; और शिव केवल देव नहीं, बल्कि चेतना, शून्य और परम शांति के स्वरूप बनकर उपस्थित हैं।

कुम्भ की आध्यात्मिक विराटता, ज्योतिर्लिंगों की यात्रा और अंततः "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" का अद्वैत-बोध—ये सभी रचनाएँ मनुष्य को आत्मा और ब्रह्म के मध्य स्थित उस मौन तक ले जाने का प्रयास करती हैं, जहाँ शब्द समाप्त हो जाते हैं।

इस भाग में अद्‌भुत, भक्ति और शान्त रस का गहन संगम है।

यहीं आकर "स्पंदन" की सम्पूर्ण यात्रा अंततः मौन, शिवत्व और आत्मशांति में विलीन हो जाती है।

भाग ५ : प्रकृति, शिव और शांति

रस-भूमिका

काव्य-शृंखला – सूची

1. दिव्य कुम्भ का आह्वान
2. शिवत्व की ओर (तीर्थ से सत्य तक की आध्यात्मिक यात्रा)
3. ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की प्रथम अनुभूति
दिव्य कुम्भ का आह्वान

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ आस्था, प्रकृति और ब्रह्मांडीय चेतना का संगम आत्मा को भीतर से निर्मल कर देता है।"

"दिव्य कुम्भ का आह्वान" स्पंदन काव्य-शृंखला की प्रथम अनुभूति है, जिसमें कुम्भ की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विराटता का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह कविता केवल एक धार्मिक आयोजन का वर्णन नहीं, बल्कि उस दिव्य अनुभूति का आह्वान है जहाँ मनुष्य प्रकृति, आस्था और ब्रह्मांडीय चेतना से जुड़ता है।

रचना में नदी की तरंगें, मंत्रों की ध्वनि, साधुओं की साधना और दीपों की ज्योति मिलकर ऐसा वातावरण रचते हैं, जहाँ मन को शांति और आत्मा को पवित्रता का अनुभव होता है। हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जयिनी और नासिक के माध्यम से कविता कुम्भ के खगोलीय और आध्यात्मिक महत्व को भी उजागर करती है।

यह रचना भक्ति, अद्भुत और शान्त रस का सुंदर संगम है, जो पाठक को उस दिव्य अनुभूति की ओर ले जाती है जहाँ आत्मा और परमात्मा का मिलन संभव प्रतीत होता है।

दिव्य कुम्भ का आह्वान

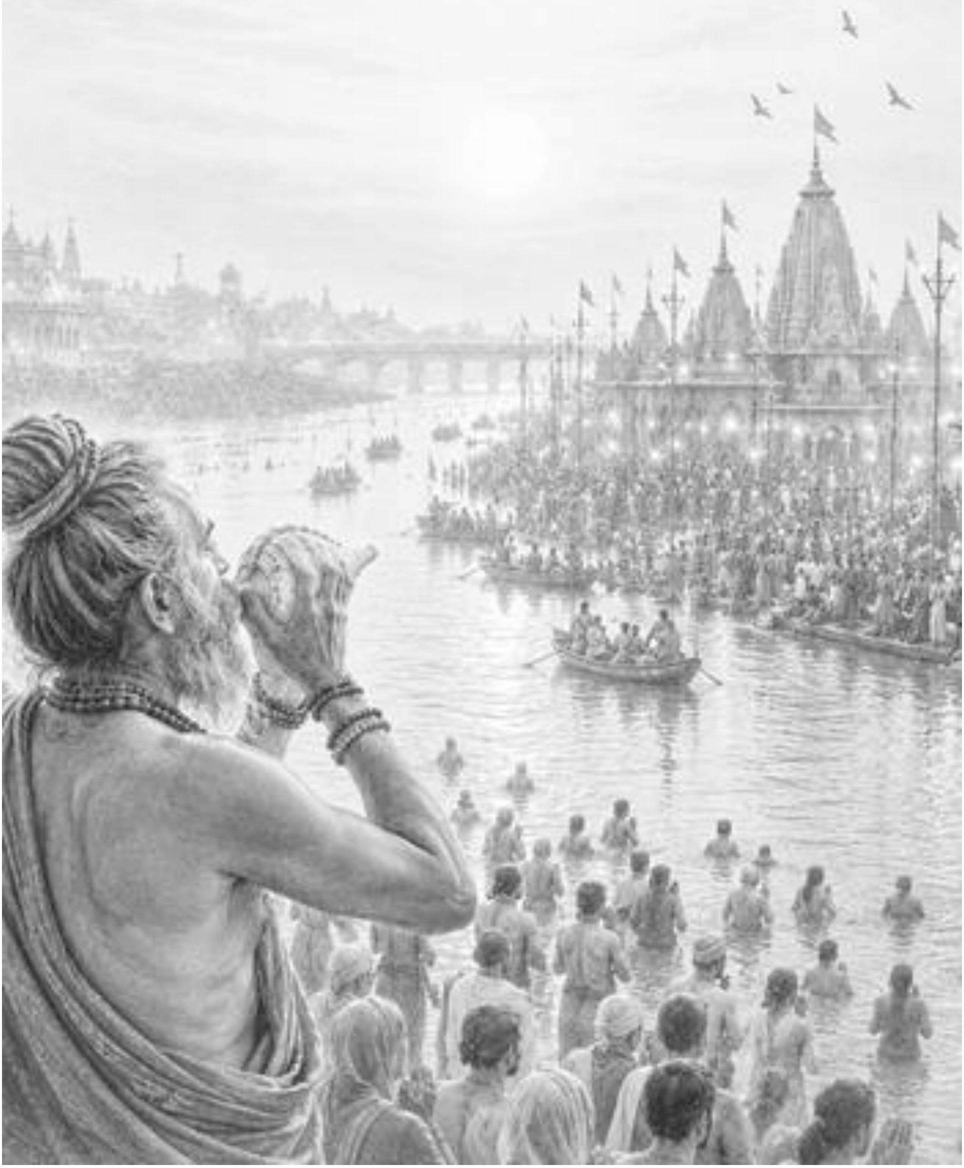

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की प्रथम अनुभूति

दिव्य कुम्भ का आह्वान

नदी में उठती तरंग देख,
हृदय में उठती उमंग देख।
प्रभु-धुन में रमे मलंग देख,
पृथ्वी से मिलता गगन देख।
आकर यह अलौकिक दृश्य देख ॥

आओ यहाँ मन की शांति ले,
घाटों पर बैठ हृदय में सौम्यता ले।
नदी में नहा तन-मन में कांति ले,
आ जा यहाँ ज्ञान-गंगा देख।
आकर यहाँ दिव्य कुम्भ देख॥

वेदों के पावन मंत्र सुन,
ऋषियों के तप का तत्त्व चुन।
भक्ति-धारा में बहता संगम देख,
आत्मा-परमात्मा का संलयन देख।
आकर यहाँ दिव्य कुम्भ देख॥

दीपों की पंक्ति से विश्वास खिले,
मन के सारे संशय पिघलें।
मन-मयूर का दिव्य नृत्य देख,
प्रकृति का अनोखा कृत्य देख।
आकर यहाँ दिव्य कुम्भ देख॥

हरिद्वार में गंगाजल की धार,
कुंभस्थ गुरु, मेष में भास्कर अपार।
प्रयागराज में त्रिवेणी संगम,
वृषभस्थ गुरु, मकर रवि संगम।
गुरु-रवि जब रचें समागम,
धरती बन जाए तीर्थ-संगम॥

उज्जयिनी में क्षिप्रा-तट देख,
सिंहस्थ गुरु, मेष में उच्च रवि।
नासिक में गोदावरी तट साजे,
सिंहस्थ गुरु, रवि सिंह विराजे।

गुरु-रवि संग रचें दिव्य विधान,
तभी अवतरित हो कुम्भ महान।
गुरु का राशिभ्रमण देख,
सृष्टि का यह अनुपम, गूढ़ तंत्र देख।
आकर यहाँ आत्म-संगम देख ॥

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की द्वितीय अनुभूति
शिवत्व की ओर

(तीर्थ से सत्य तक की आध्यात्मिक यात्रा)
कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ तीर्थ-यात्रा धीरे-धीरे आत्म-यात्रा में बदलती है और मनुष्य शिवत्व की अनुभूति की ओर बढ़ता है।"

"शिवत्व की ओर" प्रकृति, शिव और शांति शृंखला की द्वितीय अनुभूति है, जिसमें द्वादश ज्योतिर्लिंगों की यात्रा के माध्यम से आत्मशुद्धि, शिव-भक्ति और आत्मबोध का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह रचना केवल तीर्थ-दर्शन नहीं, बल्कि अशांति से शांति और माया से मुक्ति की आंतरिक यात्रा का प्रतीक बनकर उभरती है।

महाकाल, सोमनाथ, ओंकारेश्वर, केदारनाथ और काशी विश्वनाथ जैसे पावन धाम यहाँ केवल स्थान नहीं, बल्कि चेतना और आध्यात्मिक अनुभूति के विभिन्न आयाम बन जाते हैं। कविता में शिव करुणामय मार्गदर्शक के रूप में उपस्थित हैं, जो भय, कष्ट और अज्ञान को दूर कर आत्मा को निर्मलता की ओर ले जाते हैं।

अंततः यह रचना "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" के दार्शनिक बोध तक पहुँचती है, जहाँ मनुष्य अनुभव करता है कि वास्तविक मुक्ति बाहरी यात्राओं में नहीं, बल्कि अंतर्मन की शांति और निर्मलता में निहित है।इस प्रकार "शिवत्व की ओर" भक्ति, अद्भुत और शान्त रस का एक गहन आध्यात्मिक संगम है, जो पाठक को शिवत्व और आत्मबोध की ओर उन्मुख करता है।

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की द्वितीय अनुभूति

शिवत्व की ओर

(तीर्थ से सत्य तक की आध्यात्मिक यात्रा)

घूमता फिरूँ मैं पर्वत-पर्वत
खोजता हूँ किसे? नगर-डगर;
मन फिर भी अशांत लगे,
कहाँ चलूँ मैं किस पथ पर।

पहुँचा प्रथम उज्जैन नगरिया,
भैरव आज्ञा, महाकाल डगरिया;
महाकाल हों सदा सहाय,
भक्त अकाल मृत्यु न पाए।

मन से जो दर्शन कर पाए,
जीवन सफल शिव-कृपा पाये;
महाकाल जब कृपा बरसाएं,
सुख-सम्पदा, ऐश्वर्य दिलाएं।

महाकाल का आशीष लेकर,
मन चला सोमनाथ की ओर;
चंद्रदेव हुए जहाँ श्राप से मुक्त,
शिव-शीश विराजे, हो कांतियुक्त।

मन अशांत हो शांत यहाँ,
मिले आरोग्य, कटे मन-तम

सोमनाथ बाबा बड़े कृपालु
औघड़ दानी बड़े दयालु
चला मन अब श्रीशैल की ओर,
मल्लिकार्जुन दर्शन अभिलाषा;
शिव-पार्वती का यह पावन धाम,
अश्वमेध फल मिले भजते नाम।

पावन नर्मदा तट ओंकारेश्वर,
ऊँकार स्वरूप स्वयं महेश्वर
भौतिक-आध्यात्मिक कष्ट मिटाएं,
भटके मन को पूर्णता दिलाएं।

हिमालय गोद में बसे केदार,
पांडव पहुँचे शिव के द्वार।
कष्ट-बाधाएँ सब छँट जाएं,
बाबा-दर्शन मुक्ति दिलाएं।

डाकिनी वन में भीमाशंकर,
असुर विनाशी रूप भयंकर।
घोर विपत्ति संकट को हरते,
भक्तों की शिव रक्षा करते।

त्रिशूल पर टिकी है काशी नगरी,
विश्वनाथ की महिमा न्यारी।
जन्म-मरण का छूटे फेरा,
मुक्ति धाम हो अंतिम बसेरा।

गोदावरी तट बसे त्र्यंबकेश्वर,
जहाँ विराजें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर।
पितृ दोष सब जड़ से मिटाते,
सोये हुए सौभाग्य जगाते।

देवघर में विराजे वैद्यनाथ,
दीनों के हैं वो दीनानाथ।
असाध्य रोग और कष्ट मिटाएं,
आरोग्य का वरदान दिलाएं।

दारुकावन में श्री नागेश्वर,
नागों के स्वामी सर्वेश्वर।
विष और भय सब दूर भगाएं,
तम-विकराल पास न आएं।

सागर तट पर श्री रामेश्वर,
राम-हृदय बसे सदैव महेश्वर।
महापाप से मुक्ति दिलाते,
हृदय में निर्मल भक्ति जगाते।

अंतिम ज्योतिर्लिंग घृष्णेश्वर,
घुश्मा के रक्षक दयालु ईश्वर।
सुख-समृद्धि का वर दे देते,
भक्तों की सब पीड़ा हर लेते।

सत्य जो खोजूँ, मन निर्मल हो
यदि मन सुंदर, विश्व सुंदरतम
मिटे क्लेश कटे माया प्रपंचम
सत्यम शिवम सुन्दरम्

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की तृतीय अनुभूति
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

कविता का परिचयात्मक सारांश

"जहाँ अहंकार, मन और माया से परे जाकर आत्मा अंततः शांति और ब्रह्म के अद्वैत सत्य को अनुभव करती है।"

"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" स्पंदन काव्य-शृंखला की तृतीय अनुभूति है, जिसमें आत्मज्ञान, अद्वैत दर्शन और आध्यात्मिक जिज्ञासा का गहन दार्शनिक चित्रण किया गया है। यह कविता ब्रह्म, शून्य, पुरुष, प्रकृति, जीव और मन जैसे शाश्वत प्रश्नों के माध्यम से आत्मबोध की यात्रा का मार्ग खोलती है।

रचना में एक जिज्ञासु पथिक के माध्यम से दिखाया गया है कि अहंकार, वासनाएँ और इन्द्रिय-सुख मनुष्य को सत्य से दूर रखते हैं। जब मनुष्य मन और अहंकार पर विजय प्राप्त करता है, तभी वह अपने भीतर स्थित ब्रह्मांश को अनुभव कर पाता है।

यह कविता अंततः उस अद्वैत सत्य तक पहुँचती है जहाँ शिव और शक्ति, प्रकृति और पुरुष, सब एक ही परम चेतना में विलीन हो जाते हैं। इसी आत्मबोध की अंतिम अनुभूति है—समत्व, मौन और शाश्वत शांति : "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।"

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

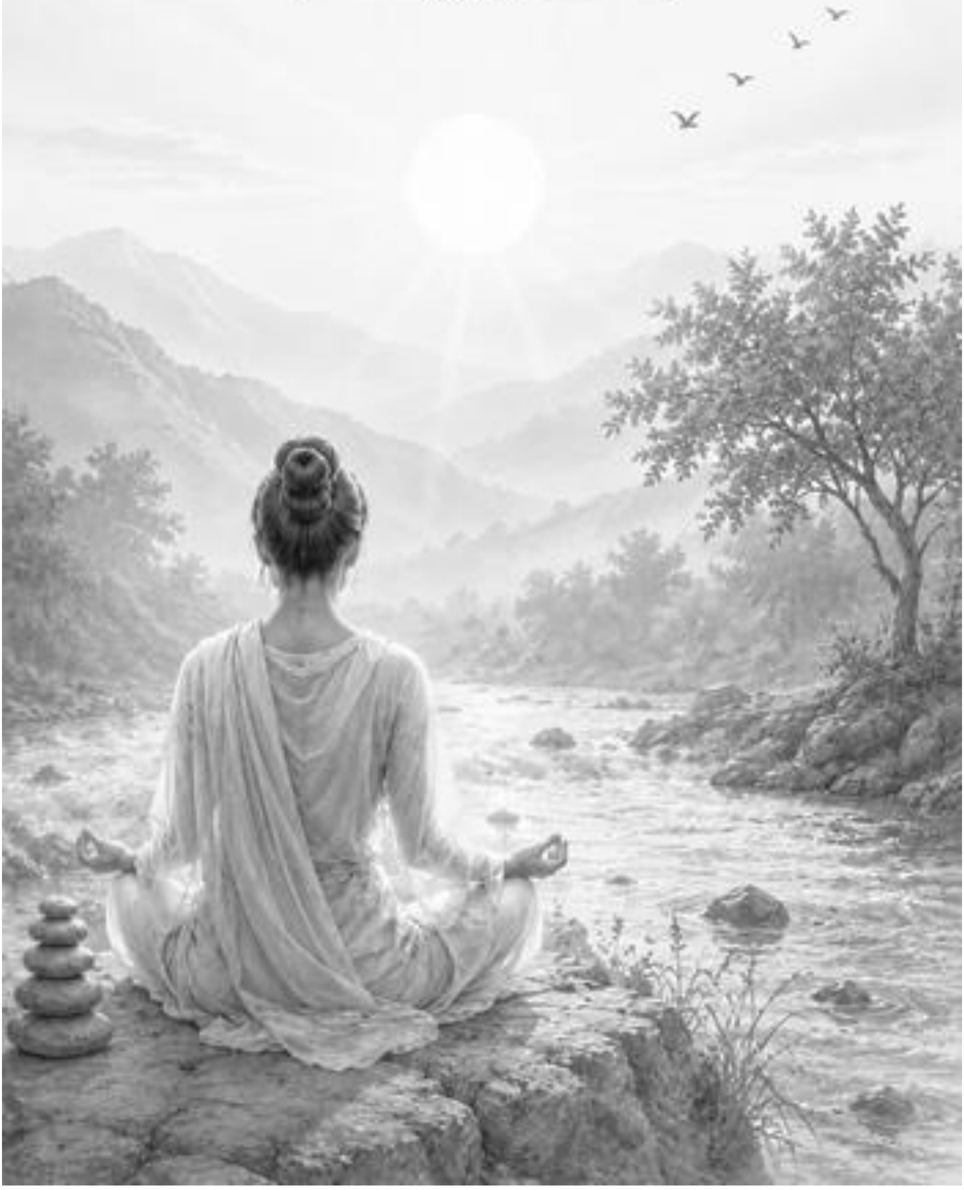

प्रकृति, शिव और शांति
शृंखला की तृतीय अनुभूति
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

क्या है यह ॐ
कैसे जानूँ उसे, कैसे समझूँ उसे
कोई बताए मुझे, कोई समझाए मुझे
क्या वही है ब्रह्म, क्या वही है शून्य

क्या है यह पुरुष, कौन है यह पुरुष
कैसे जानूँ उसे, कैसे समझूँ उसे
कोई बताए मुझे, कोई समझाए मुझे
क्या वही है ब्रह्म, क्या वही है शून्य

क्या है यह प्रकृति
कैसे जानूँ उसे, कैसे समझूँ उसे
कोई बताए मुझे, कोई समझाए मुझे
क्या वही है ब्रह्म, क्या वही है शून्य

क्या है यह जीव (आत्मन्),
कौन है यह जीव
कैसे जानूँ उसे, कैसे समझूँ उसे
कोई बताए मुझे, कोई समझाए मुझे
क्या वही है ब्रह्म, क्या वही है शून्य

क्या है यह अहं, कौन है यह मन
कैसे जानूँ बुद्धि, कैसे समझूँ उसे

कोई बताए मुझे, कोई समझाए मुझे

लगे न वह ब्रह्म,
क्या है यह मन का भ्रम
सुन सुन रे पथिक, हे रे नश्वर पथिक
तू है अहंकार-रूप, मन के अनुरूप
बुद्धि कलुषित, प्रिय इन्द्रिय-सुख
मन जो भी कहे, तू करता वही
रहता अहं में चूर, वासना भरपूर
तेरे आगे सब, लगती तुझे धूल

कर दूर अहंकार , बुद्धि कर ले शुद्ध
मन पर कर विजय, पा ले ओ पथिक
फिर जीव हो मुक्त, वही है पुरुष
वही है ब्रह्मांश , सदा ब्रह्म-लीन

वही है शिव, वही है शक्ति,
चल में प्रकृति, अचल में पुरुष
कर तू प्रयत्न, थोड़ा और यत्न
शून्य बनने का, होकर ब्रह्मलीन

वही है ॐ
और वही है शून्य
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
और अंततः सब उसी मौन में विलीन हो जाता है।

आभार

कोई भी काव्य-यात्रा अकेले पूर्ण नहीं होती।

'स्पंदन' भी उन असंख्य लोगों के स्नेह, विश्वास और सहयोग का परिणाम है, जो मेरे जीवन में विभिन्न रूपों में उपस्थित रहे हैं।

सबसे पहले, मैं अपने परिवार का हृदय से आभारी हूँ, जिनकी समझ, धैर्य और मौन समर्थन ने मुझे वह स्वतंत्र आकाश दिया जहाँ मैं अपने भावों को शब्दों में ढाल सका।

मैं अपनी पत्नी का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके साथ, सहयोग और धैर्य के बिना यह 'स्पंदन' संभव ही न हो पाता।

मैं अपने उन आत्मीय मित्रों और सहकर्मियों का भी स्नेहपूर्वक स्मरण करता हूँ, जो मेरी व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन-यात्रा में निरंतर साथ खड़े रहे।

जीवन की आपाधापी और संघर्षों के मध्य भी आप सभी का साथ सदैव सकारात्मक ऊर्जा और विश्वास का स्रोत बना रहा।

अंत में, मैं उन सभी अनाम और अपरिचित चेहरों का भी आभारी हूँ,

जिनसे मिली छोटी-छोटी प्रेरणाओं ने 'स्पंदन' के किसी न किसी मोती को आकार देने में योगदान दिया।

— अरुण सक्सेना
(अघोर आनंद)